

स्वजन मिलन

आत्मनिवेदन, १३ जून, १९७१. गत सात वर्षों से मेरा निवास आबू पहाड़ पर रहा। सर्वोदय आंदोलन से मुक्त होने पर फरवरी १९६३ में आबू आना हुआ। श्री परमानंद कापडिया, श्री त्रिकमलाल महासूत्रा, श्री गंगादास गांधी आदि के कारण धीरे धीरे गुजरात में परिचय बढ़ने लगा। १९६६ के अंत में श्री किशनसिंग जावडा, श्री उमाशंकर जोशी, श्री मुकुंदभाई कराशरी आदि से परिचय हुआ। १९६७ से गुजरात में प्रवचन मालाएं होने लगी, १९६८ से शिविर होने लगे, १९६९ से बनारस, पूना, बंबई इ. स्थानों में प्रवचन आदि का क्रम शुरू हुआ। कार्यक्रमों के आयोजन एवम प्रवचनों के प्रकाशन के लिये एक छोटासा प्रकाशन ट्रस्ट बनाना पड़ा। उस ट्रस्ट की तरफ से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, कुछ शिविर आयोजित हुए। शिविरों के लिये तथा पुस्तकों के लिये मांगे बढ़ने लगी तब सोचा कि मित्रों को एक बार बुला लूं, अपनी जीवन दृष्टि एक बार स्पष्ट रूप से निवेदन करूं।

१) अनाश्रमी हुई। चार वर्ण तथा चार आश्रमों में से किसी एक के साथ तादात्मता नहीं है। आश्रम का नाम देना ही हो तो 'स्वभाव-आश्रम' या 'सहज-आश्रम' कहा जा सकता है।

२) स्वभाव की प्राप्ति करनी नहीं पड़ती। प्रत्यवाय विक्षेप हटने पर स्वभाव उपस्थित ही है। स्वयंभू स्वभाव की उपस्थिती को उपलब्धि बनने देना है। विनम्रता एवम् ऋजुता हो तो उपस्थिती उपलब्धि बन प्रकट होती है।

३) इसलिये मेरे पास कोई तंत्र, मंत्र, शक्तिपात, दीक्षा इ. नहीं है। जीवन से अलग कोई साधना नहीं है। समग्र जीवन सत्य के उन्मुख बने, मंगल के अभिमुख बने, शुचिता एवम् सुंदरता का वरण करे। आत्मारथी व्यक्ति जीवन की समग्रता में जागृति रखेगा तो जीवन परिवर्तन पुरुषार्थ का विषय नहीं है। एक उदात्त घटना है जो अवसर देने पर घटित हो जाती है।

४) अवसर देने का अर्थ है तन को स्वस्थ, दक्ष एवम् संवेदनशील रखना। अवसर देने का अर्थ है मन को सर्वदा, सर्वथा, सर्वत्र - प्रशांत एवम् प्रसन्न रखना। प्रसन्नता या प्रसाद ही मन का स्वास्थ्य है। स्वस्थ तथा संतुलित मन, मस्तिष्क अनिवार्य है। इसके लिये आहार-विहार की शुद्धि का ध्यान रखना होता है। हरेक व्यक्ति शुद्धि का रास्ता खोजे और पाये। शुद्ध जीवन पद्धति और संयम का शील, ये परिवर्तन के अधिष्ठान हैं।

५) सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् में प्रतिष्ठित होते ही व्यक्ति की ब्रह्मांड से जो कृत्रिम पृथकता थी वो शांत हो जाती है। दूसरे शब्दों में पृथकता का आभास या आरोप विसर्जित हो जाता है। व्यक्तिचेतना अपनी शून्य-सत्ता में याने अपनी ब्रह्मचेतना के रूप में प्रकट होने लगती है। इसीको मुक्तावस्था, निर्ग्रन्थावस्था या कैवल्यवस्था इत्यादि नाम

दिये गये हैं। अनंत प्रकारों से ये बात मैं कहती आयी हूं, कहती रहूंगी। इसके अलावा कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। एक मित्र के नाते, साथी, संगी के नाते यह सत्य निवेदन करती रहूंगी।

६) जो व्यक्ति निवेदन को, सख्य संवाद को आवश्यक समझते होंगे, जिन्होंने उसकी महत्ता अपने जीवन में अनुभव की होगी, वे मेरा सहयोग करें। विमल बहन का कार्य समझकर कोई भी गवस्ति न करें। मुझे प्रचारक या कार्यकर्ता नहीं चाहिये। किसी को उपकरण या साधन बनाने की तकनीक भी इच्छा नहीं है। कोई साधन या उपकरण बनने लगे तो बहनगी नहीं होता। लज्जा एवम् खेद से भर जाती हूं। इसलिये मित्रों, आप मेरे सहयोगी बने। अनुयायी, प्रचारक या कार्यकर्ता नहीं। सखा बने, साथी बने, जीवन परिवर्तन के उपासक बने, सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् के प्रेमी बने।

७) तात्पर्य, आपके और मेरे सहयोग के लिये जितना अनिवार्य हो उतनी ही व्यवस्था, मॅनेजमेंट का आधार निर्माण हो। हम कोई संगठन न बनाये। अ मॅनेजिंग यूनिट अँड अँन ऑर्गनायझेशन (A managing unit and an organization) इन में मूलभूत फरक है। संगठन के लिये प्रचार अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये स्नेह पर्याप्त है। संगठन के लिये कार्यकर्ता अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये साथी पर्याप्त है। संगठन के लिये व्यक्ति निष्ठा या तत्व निष्ठा अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये दृष्टि साम्य एवम् मैत्री पर्याप्त है।

८) अध्यात्म में आज तक सख्य, सहयोग का आयाम या निरुपाधिक सहयोग का आयाम आजमाया नहीं गया है। अपना प्रयोग व्यक्ति, संप्रदाय एवम् संगठन निरपेक्ष हो ऐसी इच्छा है। अपने हाथों भूलें होंगी, पांव लडखडाएंगे, ठोकरें भी लगेंगी किंतु एक दूसरे को सम्हालते हुए आगे बढ़ना होगा। इससे अधिक निर्दोष या कम सदोष पद्धति मुझे दिखती नहीं है।

९) हम एकांत सेवी तथा मौन प्रेमी हों लेकिन जन विमुख न हों। उदासीन हों किन्तु सेवा तत्पर हों। सेवा तत्पर हों लेकिन सेवा की आसक्ति न हो। कर्म तत्पर हों किन्तु कार्यग्रस्त न हों। जन संपर्क हो किन्तु जन संसर्ग की उपाधि न हो। इस प्रकार की वीतरागता जीवन का एक नया आयाम है। हम वीतराग बने और साथ जीयें यह मेरा विनम्र विनय है। शिविर, गोष्ठी, प्रकाशन आदि की तरफ हम इस विज्ञानपूत मंगल नजर से देखें यह प्रार्थना है।

१०) भारत में विश्वविद्यालयों में छात्र एवम् प्राध्यापक शिविर हो सकते हैं। जैसे बनारस विश्वविद्यालय में सहज क्रम चल पड़ा, वैसे अगर अन्यत्र होने लगा तो हम उसका स्वागत करेंगे। जहां तक संभव हो, विश्वविद्यालय के प्रांगण में शिविर हों। छात्र शिविर पांच से सात दिनों तक का हो सकता है। प्राध्यापक और अभिभावकों का शिविर तीन से पांच दिनों तक का हो सकता है।

११) स्नेहमिलन, सहजीवन, सत्यसंवाद के आयोजन भी हो सकते हैं। बंबई, गुजरात एवम् सौराष्ट्र में ये आयोजन फिलहाल हों। उनमें आवश्यकतानुसार युवा शिविर एवम्

प्रौढ शिविर का स्वतंत्र आयोजन भी किया जा सकता है। अपनी तरफ से प्रचार किये बिना यदि कहीं से शिविर की मांग होती है, तो उसका शिविर समिती सहानुभूतियुक्त विचार करे।

१२) कामों का विभाजन हो जाय तो अच्छा। अ) प्रकाशन, वितरण समिती।

ब) शिविर समिती। क) अर्थ व्यवस्था। ड) अन्य देशों से पत्र व्यवहार

१३) शिवकुटी का स्वामित्व है आदर्श ग्राम स्वराज्य ट्रस्ट का। विमल बहन के जीवन काल में यहां रहने की सुविधा ट्रस्ट ने कर दी है। विमल प्रकाशन ट्रस्ट का या अन्य किसी विमल कमिटी का इस स्थान पर कोई कानूनी हक नहीं है। आज तक शिवकुटी का स्वरूप एक घर के जैसा था। मित्र, अतिथी आते रहते थे। इ.स. १९७० से पार्वती बहन को विदा कर के उस पर्व का उपसंहार किया गया। उमा बहन मुझाला शिवकुटी में रहती हैं किन्तु उनका स्वतंत्र जीवन, साधना एवम् कार्य भी रहेगा। इसलिये शिवकुटी का स्वरूप मात्र विमल निवास का रहेगा।

स्नेहाधीन आगे

विमल बहन

002- V1-1971, Mt.Abu-Swajan Milan-Talk -30-06-1971

इस वर्ष के फरवरी में मैं कुछ दिनों के लिये बंबई थी। वहां हमारे परम आत्मा परमानंदभाई कापडिया मिलने आये थे। कहने लगे, “बहन, संस्था संगठन नहीं है कहती हो लेकिन तुम्हारा भी तो एक, सुनता हूं, ट्रस्ट बना है। तो दूसरे जो संगठन और संस्थाएं हैं, उनमें और तुम्हारे कार्य में क्या फरक है? तुम्हारा भी तो प्रचार होता है, पुस्तकें छपती हैं।” परमानंदभाई एक तटस्थ समीक्षक थे। हमारे लिये अपार वात्सल्य और स्नेह होते हुए भी, समीक्षा में कभी उन्होंने इस प्यार को आने नहीं दिया। बड़ी कृपा उनकी रही।

कभी मन में था कि मेरे जो स्वजन हैं, जिनका स्नेह पाया, बंबई से लेकर कच्छ तक, आबू से लेकर सूरत तक। पिछले सात वर्षों से ऋणानुबंध वश जिनसे संबंध आया और मित्र के नाते जो मदद करते चले आये, उनके साथ कभी बैठूं और अपने दिल का खेद उनसे कहूं। परमानंदभाई को तो इतना ही जवाब दिया कि भाई, प्रचार करना होता तो काफी अच्छा हम कर सकते, तंत्र उसका बना सकते, खड़ा कर सकते। व्यवस्था के लिये एक छोटासा युनिट बनाना और संस्था, संगठन बनाना इसमें मूलभूत फरक है। लेकिन तब से बात कुछ दिल में चल रही थी कि कभी आप लोगों से बात करूं।

वैसे तो यहां अपन कमरे में बैठे हैं उतने ही मित्र हैं, स्वजन हैं ऐसा तो नहीं है। अनेक हैं। तो सब को बुलाना, सब के साथ रहना ये भी संभव नहीं होता। सोच रही थी कैसे करें, क्या करें। इतने में कल्याणभाई हैं, किशनभाई हैं, प्रेमलता है, इन सबके मन में ऐसा भी आया, हमारे वसुभाई हैं, कि कभी ये जो काम चलता है इसके बारे में कुछ व्यवस्था करनी, एक दूसरे से परिचय पाना, इसके लिये कभी मिलना तो चाहिये। वो एक स्वतंत्र लेकिन पॅरलल ऐसा विचार उनके दिल में उठा, क्योंकि मेरे भितर जो बात चल रही थी वो किसी से मैंने कहीं नहीं थी। मैं सोच रही थी सिलोन से लौटकर बात करेंगे, कुछ सोचेंगे। लेकिन स्वतंत्र रूप से इसकी एक आवश्यकता, स्वजन मिलन की, मित्रों को भी प्रतीत हुई तो सोचा बैठें।

अब पांच दिन, सात दिन लोग आवें, कहीं साथ रहें, ये हो नहीं पाता। संसारी हैं, ग्रहस्थाश्रम सम्हालना है, काम-धंदा सम्हालना है। छोड़कर आवें, सात-सात दिन रहें, सत्संग का कितना ही अभिलाष हो, लोग कर नहीं पाते। ये दो दिन तो दो घड़ियां जैसी हैं और थोड़ा समय, इसमें सत्संग तो क्या हो पायेगा? बहुत थोड़ा पड़ता है। लेकिन ये एक प्रयत्न है, एक प्रारंभ है। जैसे गंगोत्री या गोमुख हम गये तो छोटी सी धारा गंगा, आंखे विश्वास न करें कि यही वो गंगा है जो गंगासागर में देखते हैं। तो ऐसी ही ये छोटी सी एक धारा है। हो सकता है कि वर्ष में एक बार मित्र मिलन रख सकें, दो दिन के लिये नहीं सात दिन के लिये रख सकें; पचीस तीस नहीं, पचास, साठ, सत्तर, सौ, देड सौ का हो सके। कुछ होगा। ये अपन यहां जो मिल रहे हैं, उसकी थोड़ीसी पार्श्वभूमि आपको बतला रही हूं।

तीसरी एक बात थी मन में कि पांच, छः वर्षों से भारत में भी आध्यात्मिक विषयों पर मैं बोलने लगी। वैसे तो जिन्होंने मुझे सार्वजनिक जीवन में देखा है, भूदान आंदोलन के निमित्त से, वो जानते हैं भली भाँति कि उस काम में भी अधिष्ठान यही रहा। भूदान या ग्रामदान की बात भी मैं करती थी तो इस अधिष्ठान को छोड़कर कभी कर नहीं पाई। अभिनिवेश या आवेश के साथ कभी प्रतिपादन हो नहीं पाया। वो तो था लेकिन स्वतंत्र रूप से अपनी बात खोलकर रखे, जो जीया गया है वो निःसंकोच रखते चले जाए, ये नहीं हुआ था १९६५ या ६६ तक। तो इधर पांच, छः वर्षों में बोलने लगी। अब इस देश में अध्यात्म के विषय में बोलना बड़ा गुनाह है, बड़ा अपराध है। क्योंकि लोगों का एकदम भक्तिभाव हो जाता है। याने कोई जैसा स्पेशलिस्ट आवें, फिजिक्स में स्पेशलायझेशन किया है, केमिस्ट्री में किया है, सर्जरी में किया है, न्युक्लीअर स्पेस के बारे में किया है, इंजिनिअरिंग में किया है, वो व्यक्ति आवे और अपनी बात खोलकर रखे तो एक प्रकार की वृत्ति बनती है जनमानस में और आत्मा की बात यदि कोई अनुभव से खोलकर रखे तो उसके प्रति एक दूसरी ही वृत्ति, दूसरा ही दृष्टिकोण बनता है। इस देश की मिट्टी में वो चीज है। तो आत्मानुभव के विषय में बोलना, लेकिन जो श्रोता है उनके और मेरे बीच अंतर नहीं आने देना, ये अग्निदिव्य करना चाहती थी। हुआ नहीं, इस प्रकार का गुरु का, मार्गदर्शक का और अनुयायी का, शिष्य का रिश्ता अध्यात्म में चलता आया है। उसके बिना आत्मोपलब्धि होती ही नहीं ऐसा भी माना गया।

इस के विरोध में एक व्यक्ति खड़ा हुआ पहाड़ की चट्टान जैसा, उसका नाम कृष्णमूर्ति है, जे. कृष्णमूर्ति। पिछले पचास, पचपन, साठ वर्षों से बोलते गये सारे संसार से। लेकिन उनके कार्य का जो परिमाण है, द स्केल ऑन विच ही वर्कड, वो तो मास स्केल रहा। बहोत बड़ी बड़ी मीटिंग्स, हजारों की, पांच हजार की, दस हजार की। तो संख्या, ये श्रोता और वक्ता के बीच जो संबंध है, उसका स्वरूप निर्धारित करती है। तो भले बिचारे कहते गये जीवन भर की मैं मार्गदर्शक नहीं, गुरु नहीं लेकिन हजार के सामने, पांच हजार के सामने जब बैठना पड़ता और बोलना पड़ता, तो सुनने वाले के मन पर जैसे आध्यात्मिक आतंक छा जाता। इनके और हमारे बीच हॉरिझॉन्टल भी अंतर है और वर्टिकल भी अंतर है। तो जो ऑथॉरिटी, जो प्रामाण्य उनको अभिप्रेत नहीं है, वो उनपर कैसे लादा गया ये मैं देख रही हूँ।

संख्ययोग की बात विनोबाजी ने की। देश की गरीबी मिटाने के लिये आंदोलन चलाना पड़ा। भूमि के आंदोलन के बिना नहीं चलता इसलिये उसको उठाया। लेकिन विनोबा का पिंड अध्यात्म का, शुद्ध, विशुद्ध अध्यात्म जीवन जी गये। लेकिन ये कार्य उठाया और उसमें उनका अपराध इतना ही कि उपनिषदों के बारे में, स्थितप्रज्ञ दर्शन के बारे में, गीता के बारे में, समाधी के बारे में, सहजावस्था के बारे में बोलते चले गये तो उनके भी आचार्य विनोबा के संत विनोबा तो बन गये। फिरसे उनको भी पूज्य, पूजार्ह बना कर के यही मानने में आया की ये तो ऑथॉरिटी है अद्वितीय, असामान्य, अपने लिये कुछ नहीं। ये अपना नहीं। ये प्रणाम करके अपनी छुट्टी पाने लायक काम है। जो कृष्णमूर्ति के बारे में हुआ, विनोबा - विनोबा का नाम इसलिये लेती हूँ कि

उन्होंने भी किसी प्रकार का प्रामाण्य अपने शब्द का, अपने विभूतिमत्व का लादना नहीं चाहा। उनके आंदोलन में भी गणसेवकत्व लाने की कोशिश की, नेतृत्व शब्द भी उनसे सहन नहीं होता।

बहुत निकटसे इन दो महान मानवों को मैंने देखा। फिर मैं सोचने लगी कि मुझे क्या करना चाहिये। या तो ऐसा होता, इसलिये बिलकुल न बोलू, दूसरों के साथ बांटू नहीं? तो जो पाया गया उसपर मेरा भी क्या अधिकार है कि रखूं? कमाया तो कुछ नहीं। अनेकानेक संतों ने, ऋषियों ने, मुनियों ने, योगियों ने, सन्यासियों ने जीवन पथ पर मैं चलती थी तो वहां आकर, मिलकर के मुझे वो लोग देते रहे, अकारण ऊंडेलते गये, बांटते गये। वो न बांटते तो? वो न बांटते तो? इसलिये यदि भीतर स्पंदन उठते हैं तो उनको साडे तीन हाथ देह में सीमित रखने का अधिकार क्या? तो बोलना तो है और बोलूं ऐसे ढंग से कि प्रचार न हो। बोलूं इस ढंग से कि श्रोता के चित्त में मेरे प्रति कोई मार्गदर्शक का भाव नहीं आये, सखा का भाव आये। इसलिये पहला काम किया कि बड़ी बड़ी सभाओं में, परिषदों में जाना छोड़ दिया। छुट गया। जब से ध्यान में आया कि ये डायमेशन नहीं है, ये आयाम नहीं है, इस आयाम में रहकर ये शब्द प्रामाण्य और व्यक्ति प्रामाण्य को हटाया नहीं जा सकता। विनोबा को बड़ा आंदोलन का आयाम लेना, मास स्केल पर काम करना अनिवार्य था, आर्थिक और सामाजिक प्रश्न उठाने थे। और शायद कृष्णाजी की या तो ध्यान से बात छूट गयी, या उनके विभूतिमत्व का आसन ही इतना पहले से, दस बारा साल की उमर से ही, द कर्स ऑफ ग्रेटनेस वॉज अपॉन हिम, तो बच नहीं पाये उससे। कुछ हुआ जरूर।

तो मैंने सोचा मुझे तो मौका मिला है अब मैं चेत जाऊं। नहीं तो दो सौ के, चार सौ के शिविर होना ध्यान के, कोई असंभव नहीं है इस देश में। कहीं भी सत्संग होना, हजारों की सभाएं होना असंभव नहीं। आज भी नहीं, हिंदुस्थान के किसी भी कोने में। इतना भारत की जनता ने प्यार उंडेला है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक कहीं भी खड़ी हो जाऊं। बहुत स्पष्टता से देखिये, आत्मप्रत्यय निवेदन करने में विनयभंग नहीं होता है। लोगों के पास झूठी नम्रता है। जो जैसा है वैसा कहने में और आत्मप्रत्यय में न विनयभंग है, न अहंकार है।

और ये तो स्वजनों के साथ बैठी, चाहे दोष दिखे, चाहे गुण दिखे, त्रुटियां दिखे कि शक्ति दिखे, वो विमल बहन के शरीर में से प्रवास करती हुई त्रुटियां हों, गुण हों, दोष हों या आपके। ऐसा बोलने का मौका कभी मिलना चाहिये। तो छोटे प्रमाण पर जहां तहां मिलूं और निवेदन करूं। प्रतिपादन न हों और निवेदन हों, शेअरिंग हो और अंसर्शन न हो। तो पारिवारिक वातावरण नहीं टूटता है ऐसी संख्या कौनसी होगी ये ढूंढ रही हूं, आपने देखा होगा। कई शिविर में पचास से अधिक नहीं जाने देती हूं तो कहीं पचहत्तर का नंबर। ये खोज रही हूं, आप की मदद से मेरा खोजना जारी है। फॅशन न बन जाय, साल भर में चार चार, छे छे शिविर करें तो जिनको कुछ अनुकूलता है समय की, शक्ति की, पैसे की - उनकी वो फॅशन हो जाय, चलो शिविर में साल में दो बार, चार बार, जैसे तीर्थयात्रा करने जाते हैं। उन लोगों का गंगोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ से

मतलब बहोत कुछ नहीं होता। एक बार गये, मंदिर में नमस्कार किया, बहोत है। ऐसा भी हो सकता है और बहोत सारे शिविर भी चलते हैं। तो गुजरात में वर्ष में एक बार, बंबई में वर्ष में एक बार, बनारस में वर्ष में एक बार। इससे अधिक याने प्रोफेशन न बन जाय शिविरों का, ये भी देखना है। तो बहुत सावधानी रखते हुए, जितनी संभव है उतनी खबरदारी रखते हुए एक-एक, एक-एक डग भर रहीं हूं, कदम भर रही हूं।

ऐसा मिलन हों कि जिसमें मुझे बिलकुल ही बोलना ना पड़े, और भी आनंद आएगा। छे सात दिन रह रहें हैं केवल साथ। ये पता नहीं अब कब होगा। लेकिन ये सब सपने मैं देख रहीं हूं कि संख्या के आयाम को बीच में से हटा दूं। प्रवचन का जो माध्यम है इसको भी हटा सकें तो कितना अच्छा होगा! बातें चलेंगी जैसे घर में चलती हैं। ऐसी बातें चलने के लिये तो ग्यारा, बारा से अधिक व्यक्ति एकसाथ रह भी नहीं सकते हैं। बारा से अधिक व्यक्ति रहें तो बोलना ही पड़ता है, बीच में बैठना पड़ता है। तो कहां, कैसे मिले कि सख्य का धागा, जो बहोत मुलायम है, नाजुक है, वो टूटे नहीं। उसमें कृत्रिमता न आवे। किसी के मन में मेरे लिये पराया पन नहीं आवे। सामान्य स्नेह तो आपके दिल में मेरे लिये है, मेरे भी दिल में आप के लिये है। और जो कहीं जिज्ञासा किसी कोने में पड़ी होगी आपके, उसको तो थोडासा मैं, क्या कहूं, स्पर्श करके हलका सा यदि आघात कर सकूं, आक्रमण नहीं, थोडा सा स्पर्श कर सकूं और वो जाग उठे और आपको बेचैन करे, ये सारा मन में चलता है।

स्वजन मिलन का यही रूप होगा ऐसा नहीं है। ये प्रयास है, ये क्या रूप लेगा और क्या आकार इसका होगा ये भी मुझे नहीं मालूम है और मैं समझती हूं हमारे कल्याणभाई या किशनभाई को भी नहीं मालूम। इतना ही है कि कभी मित्र मिले, साथ रहे, दो दिन नहीं, तीन दिन नहीं - कम से कम पांच दिन, सात दिन तो चाहिये मुक्तता से बातें करने के लिये। ये जो हमारे मन में आया, ये आपको कैसे लगता है, इसके प्रति आपकी क्या दृष्टि बनती है, ये देखने के लिये दो दिन का अपना प्रयोग है।

विभूति पूजा के लिये पास में आने वाले, मनोरंजन के लिये पास में आने वाले, बुद्धिरंजन के लिये पास में आने वाले और आत्मजिज्ञासा के लिये पास में आने वाले, ऐसे अनेक प्रकार होते हैं। जैसे यहां से सावधानी, वैसे दूसरी तरफ से भी सावधानी, श्रोता की तरफ से भी खबरदारी और सावधानी तो होनी चाहिये। मनोरंजन की बहोत गुंजाइश नहीं है, इसलिये वो खतरा अपनेमें कम। कोई कथा कहानी कहूं, दृष्टांत दूं, ये शील नहीं है, स्वभाव नहीं है। जो जैसा दिखता है, अत्यंत सादे सरल शब्दों में, जरा भी उसको प्रसाधित, शृंगारित किये बिना जैसे रख सकती थी, रखती थी। तो मनोरंजन के लिये आने वालों का खतरा अपने बीच बहोत कम। लेकिन ये विभूति पूजा का भाव किसी के चित्त में नहीं आवे। इसको कैसे टाल सकते हैं, इस पर आप भी सोचिये। और आत्मानुभव से हटाकर के यदि अपना व्यक्तिगत महत्व किसी प्रकार ये आपकी विमल बहन

बढ़ाना चाहेगी तो उसको हाथ पकड़कर के रोकिये, टोकिये उसको। जैसे हम टोकते हैं वैसे आप टोकेंगे।

आत्मानुभव का यदि कोई तेज होगा तो उससे मेरा कोई, मैं लाचार हूं, विवश हूं। उसको तो कुछ फाइन गैप, जा नहीं सकेगा। वो मेरा या तेरा, ऐसा होता ही नहीं है किसीका। अंधःकार में खड़े हुए व्यक्ति की आभा और सूर्यप्रकाश में नहाते खड़ी हुई जो व्यक्ति है उसकी आभा, इन दोनों में तो फरक होगा, व्यक्ति का क्या अपराध है उसमें? सद्यस्नात व्यक्ति है और स्नान न की हुई व्यक्ति है, तो दोनों की ताजगी में फरक आयेगा। दो व्यक्ति खड़े हैं, तो एक व्यक्ति आप पहचान लेंगे कि ये तो स्नात है, नहा धो कर के, परिमार्जित, परिष्कृत है। दूसरी व्यक्ति न्हाई हुई नहीं। उसकी जो ताजगी होगी, उसका जो सौरभ होगा, उसमें तो कोई कर्तृत्व उसका नहीं है व्यक्ति का। उस जल का है कर्तृत्व, जिससे नहा धो कर वह व्यक्ति आया। या उस सूर्य का अपराध है, जिसके प्रकाश में वो खड़ा है व्यक्ति। इस प्रकार विशुद्ध आत्मानुभव, दशेंद्रियों के झरोखों में से जो झांकता ऐसे व्यक्ति के, उसको देखने के लिये अपन आवें। ये तो निमित्त है, आज विमल नाम के देह में है, कभी दूसरे एक्स, वाय, झेड किसी के भी देह में से प्रकट होगा। उस देह से प्रेम हो जाय तो स्वाभाविक है, आनंद हो जाय देखकर के, ये भी स्वाभाविक है लेकिन उसमें विभूति पूजा का भाव यदि किसी भी प्रकार आया तो मेरे और आपके सख्य में अंतर पड़ेगा, प्रत्यवाय होगा। और जिसको टालने की मैं अपनी तरफ से कोशिश कर रही, विनोबाजी या कृष्णमूर्ति जी या और दूसरे कोई देख कर के अपनी तरफ से जिसके लिये मैं इतनी खाबरदारी, जैसी भी हो, बरतना चाहती हूं, वैसी खाबरदारी आप भी नहीं बरतेंगे और मेरे साथ सहयोग नहीं करेंगे तो अपना सख्य का नया प्रयोग हो नहीं सकेगा। प्रेम हो, श्रद्धा हो और प्रामाण्य न हो, ये अपने को देखना है। इसकी तरफ अपने को बढ़ना है। निरुपाधिक सख्य की तरफ बढ़ना। तो स्वजनों से कहने का पहला अपना हृदय का रहस्य तो आपके सामने खोल कर रखा।

विभूति पूजा का भाव उठने के लिये कुछ कच्चा मसाला हम जैसे व्यक्तियों में होता है। उसका भी निर्देश कर दूं। आत्मानुभवी व्यक्ति के जीवन में उत्कटता इतनी भयानक होती है, सदेह उत्कटता बन जाती है वो व्यक्ति, कोई भी, पॅशन इन फ्लेश अँड बोन, इन्टेन्सिटी अँड डेप्थ दुगेदर इन फ्लेश अँड बोन। डायनॅमिझम भी रहता है, इन्टेन्सिटी रहती है, डेप्थ रहती है, लाइव्ह वायर है, लाइव्ह चारकोल है। अब ये जो उत्कटता है और ये जो गहन गंभीरता है, ये श्वासोच्छ्वास में, ये शब्द में, ये उठने बैठने में, ये स्पर्श में, स्पंदित होने वाली है। ये यदि शब्द में उस उत्कटता की और गहराई की धार लगे, तो लोग उसमें से विभूति पूजा के लिये आधार बना लेते हैं। उनको लगता है, ओहो ये असामान्य हैं, ये अद्वितीय हैं। हो भी सकता है कि वो सामान्य न हो। लेकिन ये जो धार आती है, ये कभी शब्दों के स्फुल्लिंग जैसे आभास हो जाते हैं, कुछ रोशनी दिखती है। ये वो उत्कटता के कारण है, गंभीरता और गहनता के कारण है। ये कहां से आती है शब्दों में उत्कटता, ये डायनॅमिझम, ये गतिशीलता? ये स्पंदनों की जो फ्रिक्वेंसि ऑफ व्हायब्रेशन, इन्फिनिट फ्रिक्वेंसि है। मेझरेबल नहीं है। तो ये चैतन्य का धर्म है। उसको वो व्यक्ति कभी टाल

नहीं सकेगा। तो ये उस व्यक्ति की मोनॉपोली नहीं है, उस व्यक्ति की विशेष कमाई नहीं है, उस व्यक्ति की विशेष कोई कर्तृत्व से प्राप्त की हुई चीज नहीं है। ये चैतन्य का स्वधर्म है इतना ध्यान में आयेगा तो फिर इसको देखते हुए भी विभूति पूजा का मोह नहीं आयेगा। इट्स द काँझ्युमेशन ऑफ ह्यूमन ग्रोथ और प्रत्येक व्यक्ति वहां तक जा सकता है।

मैं तो यही कहने के लिये बैठी हूं, सब के बीच, कि सामान्य व्यक्ति, अध्यात्म की जिसको उच्च से उच्चतम कक्षा कहते हैं, वहां जाकर जी सकता है और वहां पहुंचकर, जिसको आप समाधी अवस्था कहो, निर्ग्रंथ अवस्था कहो, जो अवस्था कहनी है सो कहो, उसमें चेतना रहते हुए भी खाने पीने से, रसोई बनाने से लेकर झाड़ू निकालने तक के सब कर्म समाधी अवस्था में हो सकते हैं। समाधी तक पहुँचते पहुँचते निवृत्ति का नया पसारा खड़ा करने की जरूर नहीं होती है। बल्कि जो व्यवहार, जो रिलेशनशिप्स, जो संबंध हैं उनमें काया परिवर्तन हो जाता है। कायाकल्प व्यवहार का होता है। तो यदि समाधी अवस्था में देखो कि समाधी अवस्था में रहते हुए व्यवहार हो रहा है, इतनी उत्कटता से हो रहा है, ये उत्कटता खंडित नहीं होती है, बाधित नहीं होती है, ये यदि देखोगे तो उस व्यक्ति की प्राप्ति नहीं मानना। अरविंद की उपलब्धियों को हमने उनका कर्तृत्व मान लिया। रामकृष्ण परमहंस की मोनॉपोली मान ली कि उन्होंने कमाया, उन्होंने प्राप्त किया। दूसरे नहीं कर सकते। अधिकार और अनधिकार की भाषा जिस दिन मानवीय भाषाओं में से निकल जाएगी, अ फ्रेजिऑलॉजी, उसी दिन मुक्ति का अरुणोदय होगा। तब तक नहीं। हम यहीं मानते हैं, हमारा अधिकार नहीं, हमारा अधिकार नहीं, दूसरों का है। अधिकार क्या बला है? जिज्ञासा ही अधिकार है, और कोई अधिकार नहीं। मनुष्यत्व ही अधिकार है और दूसरे किसी अधिकार की जरूरत नहीं। क्योंकि हर मनुष्य के भीतर वही चैतन्यतत्त्व भरा है जो किसी रामकृष्ण, किसी रमण महर्षी, किसी श्री अरविंद में, किसी रामतीर्थ में, किसी कृष्णमूर्ति, किसी विनोबा में पड़ा है। उसमें कोई फरक नहीं। एक खोजता है और रास्ते में से प्रत्यवाय को हटाता है, इसलिये भीतर का प्रकाश बाहर फैलता है। और हम खोजते नहीं हैं, ढँका हुआ उसको रहने देते हैं। इतना फरक है और कुछ फरक नहीं।

परिमार्जित मानव में ही भगवत्ता व्यक्त होगी, भगवत्ता की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है यह हम डंके की चोट कहना चाहते हैं। डिव्हिनिटी इज नॉट एग्जिस्ट अपार्ट फ्रॉम अँड इंडिपेंडेंट ऑफ ह्यूमनिटी। डिव्हिनिटी इज द इसेन्स ऑफ ह्यूमनिटी। मनुष्य का सत्व है भगवत्ता। तो ये जो कच्चा मसाला दिखता है न, विभूति पूजा के लिये, उस कच्चे मसाले का अर्थ हम समझ ले कि वो कच्चा मसाला आपके भीतर भी पड़ा हुआ है। सख्य में आने वाले प्रत्यवायों को आप और हम मिलकर हटाएंगे तो हो सकता है कि एक नया आयाम आध्यात्मिक संबंधों में हम और आप मिलकर खोल देंगे। इसकी मुझे बड़ी भूख है, इसकी प्यास है मुझे।

आत्मजिज्ञासा, मुझे लगता है कि लगभग सभी मनुष्यों के हृदय में कभी न कभी झाँकती रहती है। ऊपर उठती है, आवाज देती है, फिर हम उसको छिपाते हैं, हटाते हैं, दबाते हैं - बात अलग।

लेकिन जिज्ञासा नहीं है सत्य की, सौंदर्य की, शिव की, मुक्ति की, पूर्णता की अभिप्सा नहीं है ऐसा मनुष्य तो नहीं होगा। उठती है कभी कभी। बात यह है कि हमने ये मान लिया कि इस अभिप्सा की पूर्ति के लिये हम जिसको अपना संसार या व्यवहार समझते हैं, इनसे कोई अलग साधना करनी पड़ेगी। ये हमने मान लिया। याने संसार की एक सत्ता और अध्यात्म की अलग सत्ता। अध्यात्म के लिये, आध्यात्मिक जीवन के लिये एक प्रकार के मूल्यों की, एक प्रकार का मूल्यांकन, एक प्रकार की जीवन पद्धति और जिसको संसार, व्यवहार कहते हो उसके लिये दूसरी पद्धति और दूसरे मूल्य - ये जब तक स्वीकार होगा न, तब तक अनर्थ है। जिज्ञासा पनप नहीं पाती इसका ये कारण है कि जिज्ञासा के लिये चौबीस घंटे में से आप एक घंटा देंगे। सत्संग करो, सत् ग्रंथ पढ़ो, संतों के पास जाओ, आंखे बंद करो, कान-नाक बंद करो, बैठो, जप करो, पता नहीं मौन करो, सामाइक करो, प्रतिक्रमण करो, पूजा करो, विष्णुसहस्रनाम का पाठ करो, जो कुछ भी करो, एक घंटा। और बाकी तेईस घंटे में, बाकी तेईस घंटे में उससे जो विपरीत मूल्य हैं उन सब मूल्यों को अपन व्यवहार के नाम पर चलाते हैं। तो जिज्ञासा को, जब वो झांकने लगे तो जिलाने का उपाय एक है, कि जो मूल्य अध्यात्म के लिये वही होंगे संसार के लिये। सत्य बोलना यदि परमार्थ में अनिवार्य है तो सत्यनिष्ठा ये संसार के लिये भी अनिवार्य बननी चाहिये। फिर पति पत्नी से, भाई बहन से, माता पुत्र से, पिता कन्या से ये सत्य ही बोलेंगे अँट एनी कॉस्ट। लोग कहते हैं - नहीं नहीं, परिवार में तो यह नहीं चल सकता है, अन्यथा बोलना ही पड़ता है। तो परिवार में प्रमाद होगा तेईस घंटे और अध्यात्म के लिये जो एक घंटा रखा हुआ है उसमें ही प्रमाद नहीं होगा, उसमें असत्य नहीं होगा। सब बंधनों की जड एक वाणी के और मन के असत्य में है। सब बंधनों की जड। माया की जड असत्य में है, बंधनों की जड असत्य में है, हिंसा की और परिग्रह की जड असत्य में है और दूसरी कोई, गंगोत्री जैसी गंगा की है - वैसी ये पापों की कोई मूलदात्री नहीं, असत्य है एक।

टुथ इज गॉड कहने वाला महापुरुष हो गया इस देश में। उसने कहा दूसरा परमात्मा मैं नहीं जानता। उनका नाम गांधी था। जिस देश की स्वाधीनता के लिये प्रयत्न किया, “वो स्वाधीनता भी मेरे लिये तृण की कीमत की है यदि वो असत्य और हिंसा से आती है” कहने वाला एक बहादुर आदमी! हम अपने छोटे छोटे परिवारों के लिये सत्यनिष्ठा नहीं रख पाते और करोड़ों के देश की स्वाधीनता के लिये रात दिन प्रयत्नशील व्यक्ति कहता है, असत्य और हिंसा से आनेवाला स्वराज्य किसी काम का नहीं। कोई आप ये मत समझिये कि हरिश्चंद्र और प्रल्हाद ही सत्य बोलते थे और आपके राजा रामचंद्र या सनक, सनंदन ही बोलते थे। यहां देख लीजिये, अभी अभी आपके सामने जी गया। वो गांधी कोई खादी में और गांधी टोपी में नहीं है, सत्यनिष्ठा में गांधी का बीज है। चौरी-चौरा में हुआ कोई प्रकरण तो मैं आंदोलन वापस ले लेता हूं। हंसे मोतीलाल नेहरू से लेकर जवाहरलाल तक। मजाक करें उसका, बिपिनचंद्र पाल से लेकर चित्तरंजन दास तक। लेकिन वो आदमी पीछे नहीं हटा। और हम, अध्यात्म का दावा करने वाले हम, कितनी बार झूठ बोलते हैं वाणी से? साधना, साधना लोग कहते हैं, मैं कहती हूं चलो

साधना बताती हूं। घर में झूठ मत बोलो, किसी भी कारण से व्यापार में झूठ मत बोलो, नौकरी में झूठ मत बोलो। जहां भी, जहां खड़े हो वहां, सत्य की निष्ठा के लिये जो आहुती देनी पड़े दो। वो देने की हमारी तैयारी है क्या? कोई जंगल में जाने की जरूरत नहीं, कहीं पहाड़ में जाने की जरूरत नहीं और जो वाणी सत्य से प्रक्षालित नहीं है, उस वाणी से परमात्मा का नाम दिनरात जपते रहो न तो क्या होगा? इसलिये मैं कहती हूं, एक तो न ये एक उदाहरण दिया कि जिज्ञासा को जिलाना है तो चौबीस घंटे जिलाना है। एक घंटे में आर्टिफिशियल रेस्पिरेशन से जिज्ञासा नहीं जी सकती। जिज्ञासा जीवित है ऐसा सुख एक घंटे तक मिल सकता है। लेकिन जीएंगी चौबीस घंटे में। नहीं तो तेईस घंटे उसको बेहोश होने लायक हमारा व्यवहार रहे और फिर एक घंटे में कृत्रिम श्वासोच्छ्वास उस जिज्ञासा का हम कराते रहें इससे नहीं होगा।

तो असत्य की प्रतिष्ठा को जीवन से हटाने का साहस हम में है क्या? और कुछ नहीं। कोई बड़ी बात मैं आपसे करूंगी ही नहीं। दूसरा कोई पराक्रम, पुरुषार्थ, कोई बात, एक सत्य में अहिंसा भी है, अपरिग्रह भी है, प्रेम भी है, सृजनशीलता भी है, अभय भी है, सब कुछ एक सत्य में छिपा हुआ है। तो सत्य का वरण करने की और सत्य को शरण जाने की हमारी तैयारी है या नहीं? जैसा हमारी समझ में सत्य आवे, कभी कभी हमारी समझ में जो सत्य आता है वह यथार्थ नहीं भी होगा। ठोकर खाएंगे, फिर उठेंगे, कभी लडखडाएंगे, कभी गिरेंगे, कभी असफल होंगे, कभी सफल होंगे - लेकिन सफलता और असफलता को नापने के दुनिया के नाप तौल लेकर बैठेंगे तो वो नापतौल सत्यनिष्ठा के निकश पर कसे हुए नहीं हैं। उन निकशों का हमारे लिये कोई उपयोग नहीं है। उस यश और अपयश के नापने के जो नापतौल हैं, वो हमारे काम के नहीं हैं। हमारे काम का एक ही है कि सत्य बोलने से चित्त शुद्ध रहता है, सहज अभय रहता है, पाखंड से बचते हैं, दंभ से बचते हैं, दीनता-हीनता से बचते हैं। देखिये सत्य का ऐश्वर्य कैसे प्रकट होगा। अभी अभी आप लोगों के सामने गुजरात में तो हमारे श्रीमत राजचंद्र जी गये। सत्यनिष्ठा की सदेह मूर्ति। व्यापारी, कुटुंबी, ग्रहस्थाश्रमी इतने महान क्रांतिकारी आध्यात्मिक पुरुष महावीर के बाद शायद ही हुवे हों जैन धर्म में। ऐसी एक बुलंद धार थी, दीपस्तंभ - लाईट हाउस जैसी। आत्मा और अनात्मा, जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म इन सब बातों को छोड़कर के एक सत्य का वरण करें। हमारे मित्र हैं, यहां शंकर मठ में रहते हैं, महेशानंद। वो कहते हैं कि शरण जाना और वरण करना इसमें तो कोई फरक नहीं है। बात तो कुछ कही ऐसी। तो परमार्थ और संसार के बीच ये जो एक कृत्रिम खाई है, आर्टिफिशियल गॉप बनी है और दो के लिये अलग प्रकार के जो मूल्य बने हैं, इनको अपने जीवन से विसर्जित करना ये पहला कदम है।

भाई कहते थे कि वो सान्निध्य में और सहवास में एस्केलेशन ऑफ स्पीड हो जाता है। लेकिन सान्निध्य या सहवास का अर्थ क्या होगा? अपने घर में जाकर के यदि जिस विशुद्ध सत्य के शरण या वरण की हम बात करते हैं, उसपर आचरण न होता हो तो सहवास तो नहीं हुवा न? वाणी के रूप में निकलकर आप का हम आलिंगन करते हैं, वाणी के रूप में निकलकर आपके कानों के भीतर से होकर आपके हृदय में बैठना चाहते हैं। तो यदि आप कहेंगे कि ये तो विमल बहन का

तो ठीक है, शादी बादी नहीं की, घर नहीं बार नहीं, बोलने को क्या होता है? संसारी आदमी कुछ सच बोल सकता है? हो गया, कंडेमेंशन हो गया न? याने व्यक्ति के कंडेमेंशन की बात नहीं कहती हूं, सत्य का कंडेमेंशन। जिसकी अभीप्सा है उसको ही पहले कदम में हम कुचल देते हैं क्योंकि संसार की मान्यताओं की पकड़। एक सांस में संसार को माया कहेंगे, मिथ्या कहेंगे और दूसरे श्वास में उसीसे प्रतिष्ठा हम चाहेंगे, उसीकी मान्यताओं को स्वीकार कर के चलना चाहेंगे। तो कैसे चलेगा? ये जीवन द्विसत्ता-वाद में बट जाएगा। डबल रोल कैसे होगा? हाउ कैन यू ब्रिंग टुगेदर टू इन-कंपैटिबल्स?

नहीं, आजकी सरकार तो ऐसी है, वो चलने नहीं देती है। मैं जानती हूं नहीं चलने देती है। कदम, कदम पे झूठ बोलना ही पड़ता है, हाकेरना ही पड़ता है। हां तो सारा समाज यदि सत्यनिष्ठ होता तो यहां बैठ कर मुझे बोलना ही नहीं पड़ता कि सत्यनिष्ठा पर हम चले। प्रतिकूल है। ये तो लंका में बिभीषण का घर जैसे होगा, जिसकी वाणी में सत्य होगा। कठिण तो होगा, कुछ आहुति नहीं पड़ेगी ये तो नहीं है। लोग अव्यवहारिकता की पदवी आपको नहीं देंगे ऐसा भी नहीं है। तो समाज की तुलना को, स्पर्धा को, महत्वाकांक्षा को, यश-अपयश को, इन सब को लेना है और फिर हम जिज्ञासा रखते हैं ये भी कहना है - ये अपन समझ लें। ये नहीं छूटाता है तो कहना चाहिये कि आत्मजिज्ञासा अपनी जागृत नहीं हुई है। अथा तो आत्मजिज्ञासा। अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा - नहीं, कुतूहल है जिज्ञासा नहीं है। क्युरिऑसिटी है, एनक्वायरी नहीं है ऐसा समझ करके फिर हम जैसे व्यक्तियों से एकदम बिदा हो जाना चाहिये। और ये बहोत प्रेम से कहती हूं। कभी नहीं आना चाहिये संसर्ग में। क्योंकि मजा निकल जाएगा फिर। संसार में यदि मजा आता है, रस पड़ता है उस प्रतिष्ठा में, उस यश में, उस मान-सन्मान में। वो सिक्यूरिटी है, उसमें यदि आनंद आता है, मजा आता है और सत्यनिष्ठा के कारण वो जाने वाला हो तो सत्य पर चलने की यदि इच्छा नहीं है, तो फिर रात-दिन आत्मा की बात करते हैं, आत्मा को छोड़कर दूसरी बात कर ही नहीं सकते ऐसी व्यक्ति के पास जाना बेकार है न? दोनों तरफ से नुकसान होगा क्योंकि दो सत्ताओंको मानेंगे तो कदम आगे बढ़ते नहीं है। यहां आकर के आभास होगा कि अपने को जिज्ञासा है, अच्छा भी लगेगा कुछ। वहां गये तो मन को अच्छा नहीं लगेगा तो सुख जाएगा आपका। सुख-दुःख में रस लेनेका जो सुख है वो निकल जाएगा।

तो निर्णय पहले ही कदम में, पहले ही चरण में करना होता है। अध्यात्म कोई धर्म तो नहीं है न कि इधर से धन का संग्रह कर लिया फिर दान किया तो धर्म हो गया, फिर पुण्य हो गया। फिर संस्थाएं खोली, दो हॉस्पिटल खोले, दो चॅरिटी .. ये सब धर्म कृत्य जो हैं, जो पापात्मक पुण्य हैं धर्म, उसका आचरण तो आप आजका जैसा जो समाज चल रहा है, उसके सब मूल्यों के साथ धर्म चलता है, सब धर्म चलते हैं। क्योंकि जो दान का महिमा गाएगा वो संग्रह को सँक्शन पहले ही दे दिया उसने। नहीं तो दान का महिमा गा नहीं सकता है। तो धर्म तो चल सकता है लेकिन अध्यात्म आग है - और आग कैसी? सत्यनिष्ठा की आग। इसको हम लोग पकड़ नहीं पाते। मैं सच कहती हूं, जो लोग अध्यात्म में आगे बढ़ नहीं पाते हैं, इसका दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता

सिवाय इसके कि सत्य का महिमा, या तो बुद्धिगत नहीं हुआ, या तो बुद्धिगत होकर भी आचरण में लाने का टाला जाता है, कोई न कोई दलील दे कर के।

अब सत्य से और सत्य निष्ठा से क्या मतलब उसको भी देखे। जो जैसा दिखता है, जो जैसा प्रत्यय है भीतर, उस प्रत्यय के अनुसार भी क्या कहूं, उस प्रत्यय को व्यक्त करना, उस प्रत्यय को जीना। हम जैसे हैं वैसे व्यवहार में प्रकट होना - काया, वाचा, मनसा। बनने की, बनाने की, ठगने की, दिखाने की, छुपाने की, हटाने की, टालने की, किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं। जैसे हैं वैसे हैं। प्रत्यय न हो वह बात वाणी से न निकालना। जो जीया नहीं गया है, वो दूसरों से नहीं कहना। जो जितना जीया गया उतना बोलो। जो जैसा दिखता है वैसा ही वाणी ने धारण करना। फिर अतिशयोक्ति नहीं होगी, फिर अव्याप्ति नहीं होगी, फिर अन्यथा ख्याति नहीं होगी। बड़ा सरल जीवन बनेगा। जो सच बोलेगा उसको डरने का कारण क्या है? जो झूठ बोलेगा उसीको भय है न कि पकड़ा जाऊंगा। कोई बतला देगा, कोई दिखला देगा, कोई जतला देगा, पहचाना जाऊंगा। तो प्रत्यय को जीने वाले व्यक्ति के जीवन में सहजता, सरलता ऐसे उतर आती है जैसे वो गंगा उतरी होगी कहीं, गंगावतरण हुआ होगा वैसे।

ये अभय की प्रतिष्ठा होगी तो चिंता नाम की व्याधि जो हमको सताती है, वो नहीं सताएगी। जो चुनौतियां हैं, जो चैलेंज है सामने, जो आवश्यकता है, उसका जो भी प्रतिसाद उठता है वो कर्म होगा हाथ से। सामने जो समस्या है, लेकिन भविष्य की चिंता नहीं। वर्तमान के जीने में इतना आनंद आने लगेगा, इतना एक जायका, लुत्फ उसमें पैदा होगा। जीवन की फलश्रुति जीने में है। दूसरा तो जीवन का कोई प्रयोजन नहीं, उद्देश्य नहीं है। प्रतिपल जीने में ही जीवन की फलश्रुति है। सचाई से, निर्भयता से प्रत्येक क्षण में जीना यही फलश्रुति है। फुलफिलमेंट ऑफ लाईफ इज इन लिविंग। आज मैं सचाई से रहता हूं तो कल क्या होगा, इसका परिणाम क्या होगा? दूसरे के मन में क्या होगा, दूसरे के मेरे प्रति व्यवहार में क्या होगा, ये सारी जो चिंताएं हमको सताती है न। हम देखते रहते हैं दूसरों की आंखों में, ये अनुकूल बनता है कि प्रतिकूल बनता है, ये खुश है कि नाराज है, इस को मेरे प्रति कोई संदेह तो नहीं हुआ है, इस प्रकार की चिंता जो व्यवहार में अपने को एक दूसरे के पास आने नहीं देती है, वो चिंता हट जाती है। सचमुच कहती हूं, अपने मन टटोलकर हम देखें, कदम भी उठाते हैं, जबान भी खोलते हैं तो सामने वाला राजी होगा, नाराज होगा, इसके मन में क्या प्रतिक्रिया होगी, प्रेम के कारण मधुर व्यवहार होना बिलकुल अलग चीज, प्रेम में खुशामदखोरी नहीं होती है। प्रेम में ऋजुता है, वो चुभती नहीं है नं। वक्रता हो तो चुभेगी। ऋजुता चुभेगी कैसे? इसलिये वो सहज ही मृदु, मधुर व्यवहार हो जाता है।

लेकिन हमचिन बराबर खयाल रखते हैं कि अब यहां से ऐसा बॉल मार दूं कि वो बाउंडरी हो जाय, सिक्सर हो जाय। अपनी प्रत्येक रिलेशनशिप, प्रत्येक संबंध इनव्हेस्टमेंट हो जाता है सामने वाले व्यक्ति को खुश और राजी रखनेका। फिर चिंता रहती है नं, फिर स्ट्रैटेजी, बराबर

उसकी कैसी व्यवस्था करूं, कैसे रचना करूं। इसका मतलब ये है कि दूसरों के हाथों में जीवन के सूत्र दे देने। जीवन की गति स्वाधीन नहीं, पराधीन। फिर हमारी शांति भंग करनेकी क्षमता भी दूसरों में आ जाती है। दूसरे ने कुछ कहा, अपमान हो गया, गई शांति। दूसरे ने प्रशंसा की, बहोत हर्ष हो गया, गुदगुदी हुई, शांति गई, समाधान गया। हमारी अपेक्षा पूरी हुई, उत्तेजना आई, अपेक्षा पूरी न हुई, निराशा हो गई। कहीं भी समतुला, जीवन का संतुलन रह नहीं पाता क्योंकि जीवन के सूत्र दूसरे के हाथ में हैं। उसका क्या पॉइज रहेगा, उसकी समतुला, संतुलन रहेगा क्या? तो सत्यनिष्ठा से जीवन के सूत्र स्वाधीन हो जाते हैं, पराधीनता से मुक्ति होती है व्यवहार में - यहां, अभी, इसी पल। फिर नम्रता रहेगी, दीनता नहीं। निर्भयता रहेगी, उत्थृंखलता और उहंडता नहीं। मधुरता, मृदुता रहेगी, चापलुसी, डिप्लोमसी नहीं। ये सब चलता है, घरमें भी चलता है पति-पत्नी के बीच, मां-बेटे के बीच, मित्रों के बीच, सब जगह चलता है। ये है अध्यात्म के रास्ते में प्रत्यवाय। वो दस मिनिट बैठे और ध्यान नहीं लगा ये नहीं। और जप करते हुए मन भटक गया ये विघ्न नहीं है। विघ्न तो वहां बैठे हैं सब और हम उनको खोज रहे हैं कि ध्यान में बैठता हूं तो फिर वो ऐसा प्रकाश नहीं दिखता, वो नाद सुनाई देता है, उसको वो पीठ में स्पंदन होते और पेट में स्पंदन - ये तो कहां अध्यात्म को ले गये?

विघ्न वहां नहीं, प्रत्यवाय वहां नहीं। ये लोग टेप कर रहे हैं लेकिन मेरे बोलने में कोई सिलसिला नहीं रहेगा भाई। टेप करनेका व्याख्यान तो नहीं आजका। आप लोगों के बहोत टेप बेकार होंगे। मैं तो गप लगाने बैठी हूं न आज।

आप मुझे गलत न समझें। ऐसी सत्यनिष्ठा से जीनेवाले व्यक्ति का जीवन आज के समाज में सुखद होगा ये नहीं कह रही हूं। सुखद नहीं होगा। स्मूद रनिंग तो नहीं होगा। स्मूद सेलिंग नहीं होगा। लोग हसेंगे, लोग ठगना चाहेंगे। ठगेंगे भी। मूर्ख कहेंगे। ये सब होगा। तो विरोध होगा, असहयोग होगा, घरमें होगा। इतना सत्य बोलना और ये सब करना है तो शादी क्यों की फिर? करना ही नहीं था, बैठना था किसी जंगल में जाके। याने सत्य सब मठ वालों के लिये है, जंगल में रहने वालों के लिये है। समाज में तो, ऐसे ही सब चलना था तो फिर शादी क्यों की, बड़े साधू और संत बनने गये, बड़ी साध्वी बनने गयी। शादी क्यों की? अरे बाप रे! ये एक धर्मक्षेत्रे, पुण्यक्षेत्रे, भारतवर्षे ऐसी अवस्था है।

फिर कहते हैं कि उनको दुःख नहीं होगा इस ढंग से घुमा, फिरा कर बात करने गये। याने परिधि पर घूम कर के आ गये, केंद्र में जो बात है उसको नहीं कहा क्योंकि कहने से दुःख होता है। तो दूसरों को दुःख होगा, इतनी पर्वा, इतनी चिंता है दूसरे के दुःख की, कि दूसरे को दुःख होगा इसलिये हम परिधि पर घूम कर के आये कि बात कही भी - नरो वा कुंजरो वा, कही भी और नहीं भी। हम इतने चतुर बने हैं, आत्मवंचना की कोई सीमा नहीं है। झूठ बोलने वाले लोगों के पास, आचरने वालों के पास पैसा ही सिर्फ होगा ऐसा नहीं, केवल प्रतिष्ठा होगी ऐसा भी नहीं, वो जा कर के सायकिक पॉवर्स खरीद सकते हैं। हजार, दो हजार, पांच हजार देकर किसीसे

कुंडलिनी जगा लो, किसी के पास शक्तिपात करा लो, शक्तियां प्रकट करो, ये सब होगा। उस चकाचौंध में आदमी आ जाता है, उसको लगता है उनका कितना विकास हुआ है। वो आध्यात्मिक विकास सूर्य की रश्मियों में पड़े हुए अनंत प्रकाश के खजाने को देख नहीं पाते और आंख बंद कर के प्रकाश दिखा कि आध्यात्मिक विकास हुआ। नादात्मिका पराशक्ति नादरूपो महेश्वरः। प्रत्येक शब्द में उठने वाले जो नादरूप महेश्वर के स्पंदन है उनको पकड़ नहीं पाते हो, कान बंद करके फिर भीतर का नाद सुना तो आध्यात्मिक हो गया। बाहरका क्या बिचारा नाद, उसने क्या अपराध किया? उसमें नहीं है पराशक्ति? बाहर जो रूप दिखता है वृक्ष का, पहाड़ का, नदियों का, सुंदर सी मनुष्य आकृति जो भगवान के बनाये हुए, भगवान ने अपने ही मंदिर तो बनाये हैं, हम लोगों को क्या बनाया? हमारी सब की ये जो काया है, ये प्रभू के मंदिर ही तो हैं - स्वरचित। धंदा नहीं उसको, दर्पण बनाता है। मनुष्य की आकृति रूपी दर्पण बनाकर अपना रूप निरखता रहता है। फुल टाईम ऑक्युपेशन आपके भगवान का।

तो ये जो वृक्ष हैं, पहाड़ हैं, नदियां है, आकाश है, मनुष्य है, इन में जो भगवत्ता प्रकट हो रही, वो जो भगवत्ता का दिव्य रूप है, उसको नहीं देखना है और आंखे बंद कर के रूप दिखा, कोई लाल प्रकाश और कोई आकार दिखा तो वो हो गया आध्यात्मिक। और इस रूप ने क्या किया, आप ने क्या किया? आप भी तो रूप ही हैं उस अरूप के। तो इस प्रकार अंदर बाहर का झगडा, झमेला मोल नहीं लेना। परमार्थ, संसार के द्विसत्ता-वाद का झमेला मोल नहीं लेना। अध्यात्म की साधना के नाम पर जीवन से परावृत्त नहीं होना है। जीवन में बैठकर जहां जी रहे वहीं पर सत्य को जीने का पुरुषार्थ करना है। ये वो अध्यात्म साधना अँटिसोशल नहीं बनेगी, आयसोलेशन में नहीं बनेगी, छायेगी नहीं।

आहुतियां पड़ेंगी सत्य की वेदी पर। जो यज्ञ चल रहा है निरंतर, उसमें सत्यनिष्ठ की आहुतियां पड़ेंगी। ऐसी आहुति अपना जीवन बन जाय तो क्या बुरा है? इसलिये मैंने निवेदन में लिखा कि मैं तो कोई तंत्र, मंत्र कुछ नहीं जानती। मुझे कुछ भी तो मालूम नहीं। जो जो कुछ दिखाया वो सत्यनारायण ने, सत्य भागवान ने दिखाया। सत्य में छिपा हुआ उसका जो मकरंद है, उसकी जो सुगंध, सौरभ है, जिसको प्रेम कहके आप लोग बुलाते हैं, कहते हैं ये प्रेम है, उसी में छिपा हुआ है। अपरंपार स्नेह है, कहां भाई में स्थित है। तथ्य है उसमें। लेकिन वो स्नेह भी मेरा कर्तृत्व नहीं है। टूथ इन अँक्शन इज लव्ह। सत्य व्यवहृत हुआ कि प्रेम ही उसका स्वरूप बनता है। प्रेम व्यवहृत सत्य है। तो अपमानित होंगे, उपेक्षित होंगे। अहा, कितना आनंद आएगा ऐसे जिज्ञासुओं को जब मैं देखूंगी कि अपमानित हो रहे, उपेक्षित हो रहे, ताड़ना हो रही, जहां असत्य की प्रतिष्ठा है वहां सत्यनिष्ठ उपेक्षित नहीं होगा तो क्या होगा? हिंसा का तांडव है वहां प्रेम और अहिंसा की वंशी बजाने वाला जो है, वो अपमानित नहीं होगा तो क्या होगा? उसकी बांसरी लेकर, तोड़ फोड़कर फेंक नहीं देंगे तो क्या करेंगे? ऐसा एव्हरी इनडिविज्युअल बिकमिंग अ लिविंग सेल ऑफ रेव्हल्यूशन। क्रांति है अध्यात्म, जीवन परिवर्तन है। मैंने कहा जीवन परिवर्तन घटित होना एक घटना है। हम परिवर्तित नहीं कर सकेंगे। परिवर्तन घटेगा। तो सत्य का वरण

करने पर निर्भयता का वरदान मिलता है। प्रेम का सौरभ ओतप्रोत हो जाता है। ऋजुता और सरलता ये चरण बनते हैं, आपकी गति बनती है। ये प्रारंभ है। अध्यात्म का अधिष्ठान है ये। इससे दूसरा अधिष्ठान जाना नहीं मैंने, जाना नहीं।

स्त्रियों के लिये सत्यनिष्ठा और भी कठिन। कहीं तो लिख दिया है कि अमृत स्त्री स्वभाव। उनकी लज्जा, विनय में ये अमृतम्, इधर उधर मिथ्या बोलना, मां बच्चे को सब सत्य नहीं बतला सकती, पत्नी पति को सब सत्य नहीं बतला सकती। वो तो मुष्किल हो जाता है घर चलना ऐसे कहे। और ये सब दलील दी जाती है। दलील याने वो दिक्कत आती है। तो दिक्कत तो आयेगी लेकिन, ऐसी वीर पत्नी, स्त्रियां, नारी जब तक नहीं निकलते। नाराज होगा पति, क्या लेगा? पुत्र नाराज होगा तो क्या लेगा? मां नाराज होगी तो क्या लेगी? झूठ बोलने से जो आत्मा की हानी है, उससे अधिक हानी तो पति और पत्नी और मां नहीं कर सकते। लेकिन पल भर की राजी और खुशी दूसरे व्यक्ति के रहने के लिये, आत्मा का भव भव का नुकसान जो खरीद लेते हैं उसका क्या? ग्रंथि जो बनाते हैं उसका क्या? तो भाई कहते थे न कि आव्हान है, एक चॅलेंज है, एक परकार है और इसको मैं बहुत निर्दय हो कर के मेरे स्वजनों के पास रखती हूं।

ये मेरे साथ रहने वालों की तो, उनके चरणों में तो सुबह से शाम तक साष्टांग प्रणिपात करूं क्यों कि इतना-सा झूठ उनका मैं नहीं सहन नहीं करती। बड़ी दिक्कत में आ जाते हैं, क्योंकि संसार में उनको आदत होती है असत्य बोलने की और मेरे पास आये कि सुबह से रात तक सर्च लाइट ऊपर लगा हुआ है। प्रेम की धार और सत्य की धार एक हो जाती है। तो मन में एक और वाणी में दूसरा आया तो बिचारे छिपा नहीं सकते। क्या करें, मन में क्या है दिख जाता है और मुसीबत उनकी। कुशलता कुछ लाने गये वाणी में, घुमा फिरा कर बात करने लगे तो जो केंद्र है उसको पकड़ लिया। शिविर में आते हैं, दो दिन प्रवचन सुनते हैं, प्रश्न पूछते हैं तो उनके साथ बहुत सौजन्य से पेश आते हैं। उनके साथ तो कठोर नहीं होते हैं। विश्लेषण में जरूर, लेकिन उनकी जो व्यक्तिगत भूलें हैं, उनके जो व्यक्तिगत गलत कदम जान बूझ कर उठते हैं, उनके बारे में कुछ नहीं कहती शिविरों में। दिखता है फिर भी नहीं बोलती, अविनय हो जाता है। लेकिन कोई कहे कि विमल बहन के साथ रहो पांच सात रोज, बड़ा कठिन हो जाता है। इतनी-सी अव्यवस्था, इतनी-सी अस्वच्छता, इतना सा असत्य सहन नहीं होता है। संवेदनशीलता का दम घुटने लगता है, सांस नहीं ली जाती है। और कहे-अनकहे, बोले-अनबोले सभी शब्द मालूम हो जाते हैं। जो भीतर उनके घूमते हैं न शब्द, वो एकदम एक्स रे के जैसे दिख जाते हैं। मेरा कोई उपाय नहीं चलता है। रोकती हूं अपने आपको कि, दिखता है - बोलो नहीं, दिखता है - बोलो नहीं। लेकिन कब तक होगा? प्रेम जहां है वहां - जहां प्रेम वहां नेम नहीं - मुष्किल हो जाती है।

ये न समझना कभी कि इस व्यक्ति के साथ रहना सुखद है। मैं नॉर्वे में जिनके यहां ठहरी थी, एक दिन, एक बार बहन ने बुलाया। दूसरी बार कहा, विमल, विमला यू आर अ लिविंग व्होल्कॅनो, नेक्स्ट टाईम आय वॉन्ट हॅव यू इन माय हाउस। बिचारी प्रामाणिक बाई, दूसरी बार उसने मुझे

हॉटेल में रखा। घबरा गई। मैंने कहा, पचास वर्ष कृष्णमूर्ति सुनकर यही किये तूने? एक तो मुझे सवाल नहीं पूछना। सवाल नहीं पूछियेगा तो,

देखे सबही कुछ आंख से, मूं से न कुछ कहे।
गालिब दिमर हव्वा कहे दुनियां में यों रहे॥

हम रहेंगे, लेकिन पूछोगे तो फिर क्या करें? पूछने पर तो बोलना पड़ता है न? झूठ कैसे बोलेंगे? और वो पूछने पर विश्लेषण सहन करने की शक्ति नहीं होती। जब तक प्रेम का हमारे विश्वास न हो, तब तक वो विश्लेषण नहीं होगा पार.....। निर्देशन, पॉइंटिंग आउट सहन नहीं होता..... लेकिन जितना स्वजनों से कहती हूं उससे सौ बार अधिक कठोर और निष्ठुर मैं अपने साथ भी हूं। अखंड जागृति का असिधारा व्रत न रखे तो आत्मरत जीवन संभव नहीं।

खैर, कहना था सो तो आत्मनिवेदन में ही कह चुकी थी। इसीलिये आत्मनिवेदन में जो कहना था उसको बिलकुल पॉइंट बाय पॉइंट रख दिया मैंने। मैंने कहा मुझे जब बोलने को कहेंगे तब तो मैं गप लगाउंगी उनके साथ बोलुंगी। प्रवचन भी नहीं करूंगी, व्याख्यान तो नहीं ही लेकिन प्र-वचन भी नहीं। बात करेंगे। अभी अपने को रुकना चाहिये क्योंकि हमने ३.२५ को शुरू किया और शायद ४.५० हुए। ठीक है न। तो अभी तो अपने को रुकना है। अच्छी मधुर भजन सुनकर के ही करेंगे। कहाँ गये हमारे कौमुदी बेहेन? गाओ बेहेन ...

003-V2-1971,Mt.Abu-Talk -Swajan Milan 01-07-1971

अनंत ऐश्वर्य का विस्तार, यह विश्व प्रभुकी अनंत शक्तियोंका प्राकट्य, शक्तियों का विहार स्थान। परमात्मा के इस अनंत ऐश्वर्य के विस्तार को देखने और समझने के लिये मानव पैदा हुआ। मनुष्य का जन्म इस विश्व का बोध होने के लिये, व्यक्त और अव्यक्त के परदे में अवगुंथित और आवरित जो प्रभु है, जो विभु है उसके साथ मिलन साधने के लिये हुआ। उस साक्षात्कार के लिये, उस मिलन के लिये मानव के पास साधन हैं, करण हैं, उपकरण हैं, इंद्रियां हैं। बहिर्मुखी इंद्रियां हैं, अंतर्मुखी इंद्रियां हैं। उनका ठीक उपयोग करना यदि मानव सीख ले तो व्यक्त और अव्यक्त, दोनों के द्वारा प्रकट होने के लिये आतुर परमात्मा से उसका मिलन होता है। इंद्रियों का विषय के साथ जब संबंध आता है और उसमें से जो सुख होता है, तो सुख एक गवाक्ष है जिसमें से प्रभुदर्शन हो सकते हैं। इंद्रिय विषयों के संबंध में से प्रभुका साक्षात्कार न हुआ तो संबंध व्यर्थ गया। इंद्रिय और विषय के संबंध में से विषयानंद या ब्रह्मानंद नहीं, जीवनानंद मिलना चाहिये। विषयानंद के विरोध में खड़ा हुआ ब्रह्मानंद किसी काम का नहीं। इन दोनों के द्वंद्व से मुक्त जो जीवनानंद, वह लूटने और लुटाने के लिये हम यहां आये हैं।

लेकिन सुख और दुःख के गवाक्षों में से हम झांकते नहीं। सुख और दुःख में उलझ जाते हैं इसलिये जीवन का आनंद लूट नहीं पाते। बहिर्मुखी इंद्रियां हैं, जिनको आप लोग कर्मेन्द्रियां कहते हैं, उनके द्वारा विषयों से संबंध होता है। रंग का, रूप का, रस का, स्वाद का, सौरभ का संबंध होता है। व्यक्त का संबंध होता है। उस व्यक्त के संबंध में से जो सुख-दुःख के संवेदन उठते हैं उनको मन अपने पालव में झेल लेता है। उसका पालव फैला हुआ है, आंचल फैला कर के सुख-दुःख के संवेदनों को मन बटोरता है, परिग्रह करता है। असल में वह परिग्रह की वस्तु है न। ये परिग्रह सूक्ष्म हैं और इस परिग्रह में जिसका अनुराग हो जाता है तो अवांछित के प्रति द्वेष और वांछित के प्रति राग, अप्रिय के प्रति द्वेष और प्रिय के प्रति राग। इस प्रकार राग-द्वेष में मनुष्य का दामन उलझ जाता है। सागर किनारे वो चमकीले पत्थर बटोरने वाले बच्चे और उन मन के अंचल में सुख-दुःख के संवेदन बंटोरने वाला मानव, इनमें क्या फरक? और बच्चे लडते झगडते है कि मेरे पास ज्यादा चमकीला है, तेरे पास कम चमकीला; मेरे पास इतने रंग हैं, तेरे पास दो ही रंग के पत्थर; मेरे पास त्रिकोण, चौकोण और षट्कोणी है और तेरे पास कुछ भी नहीं। ऐसे ही सुख-दुःख के संवेदनों को बटोरकर उनमें आत्मश्लाघा, आत्मगौरव, आत्मग्लानि और विषाद मानते हुए हम चले जाते हैं इसलिये आनंद की उपलब्धि होती नहीं है। इंद्रिय विषय संबंध में जिंदगी निकल जाती है, “कामान गुंथा वयमेव भुंक्ता”। इंद्रियां हमारे ही जीवन का बलि ले लेती हैं। तो इंद्रिय विषय के संबंध में से सुख-दुःख होने पर भी उनको गवाक्ष समझकर के उनमें से झांकने की जागृति हो वो तो जी जाता है।

ये हुआ बहिर्मुखी इंद्रियों का व्यापार। जो मन का अंचल, मन का पालव फैला हुआ है, उसमें सुख दुःख के संवेदन आये भी तो उनको देख लिया और झरने दिया, स्मृति में उनको बटोरा नहीं।

स्मृति में बटोरते चले जायेंगे तो इस परिग्रह के बोझ में दब जाते हैं। परिग्रह मनुष्य को दबाता ही है। विचारों का हो, वृत्तियों का हो, संवेदनों का हो, पाषाण-पत्थरों का हो, धन-दौलत का हो, पदार्थों का हो, व्यक्तियों का हो। इसलिये वीतराग परिग्रही नहीं और अपरिग्रही भी नहीं। परिग्रह का अभाव है वो अपरिग्रह, निषेधात्मक। वीतराग के बाद परिग्रह और अपरिग्रह का द्वंद्व ही नहीं। प्रारब्ध वश जो आया उसका विनियोग कर लिया, परिग्रह - अपरिग्रह के द्वंद्व में बिना फंसे। तो व्यक्त के साथ संबंध - रंग, रूप, रस के साथ संबंध, सौरभ के साथ संबंध रखने वाली ये कर्मेन्द्रियां।

फिर ज्ञानेन्द्रियां हैं, जिनका संबंध अव्यक्त के साथ। व्यक्त होगा ही नहीं यदि अव्यक्त न हों। तो व्यक्त और अव्यक्त वैसे ही साथ चलते हैं जैसे धूप और छाया साथ चलते हैं। तो अव्यक्त के साथ संबंध रखने के लिये ज्ञानेन्द्रियां हैं। बुद्धि है, अव्यक्त को चीन लेती है, परख लेती है, निरख लेती है। कल्पना शक्ति है। जैसे फोर-लाइट और हाइंड-लाइट होवे मोटर के वैसे कल्पना आगे का दिखाती है, स्मृति पीछे का दिखाती है। तो अव्यक्त को देखने के लिये बुद्धि है, कल्पना है, स्मृति है धृति है। ये सब अव्यक्त के साथ संबंध, याने कर्मेन्द्रियों का जब स्थूल विषयों के साथ संबंध आता है तब ज्ञानेन्द्रियां यदि जागृत रही तो व्यक्त के साथ अव्यक्त को भी वो जोड़ देती है। तब सुख और दुःख के होने वाले संवेदन केवल स्थूल पदार्थ और इंद्रियों के संघात में से नहीं, और गहराई में से पैदा होते हैं। बाहरसे भीतर अपन जा रहे हैं। तो संवेदनों का जन्म स्थान केवल इंद्रियों का स्थूल विषयों के साथ संबंध नहीं है, केवल व्यक्त के साथ संबंध नहीं है। व्यक्त और अव्यक्त के गुंफन में से संवेदन का जनम होता है। फ्रॉम द सिंपल टु द कॉम्प्लेक्स। उसमें गहराई आती है। व्याप्ति भी बढ़ती है। सुख या दुःख के संवेदनों का ऐश्वर्य भी बढ़ता है।

मैंने कहा, ये विश्व प्रभु के अनंत ऐश्वर्य का विस्तार है। अनंत शक्तियों का प्राकट्य है। तो ये जो इंद्रियां हैं, ये दोनो तरफ चलती हैं, बहिर्मुखी भी और अंतर्मुखी। पहली परांछि खाली जाती वो केवल बाहर की ओर देख सकती है, स्पर्श पा सकती है। लेकिन ये जो ज्ञानेन्द्रियां हैं ये बाहर भी और भीतर भी, दोनो तरफ चलती हैं। जैसे दहलीज में, उमरें पे रखा हुआ दीपक दोनो तरफ प्रकाश करता है। ऐसे इन इंद्रियों से जो ज्ञान होता है वो दोनो तरफ प्रकाशित करेगा; शरीर के भीतर का, बाहर का। तो बुद्धि भीतर का भी देख सकती है। अव्यक्त मुखी और अंतरमुखी हैं ज्ञानेन्द्रियां। लेकिन व्यक्त हो या अव्यक्त हो, याने साकार में आकार है तो निराकार में भी आकार का अभिसंधि तो है ही। तो ये इंद्रियां जो हैं ये आकार से मर्यादित, आकार की परिधि से बंधे हुए निराकार को देखती हैं। ओहो कैसे क्या? रूप के परिधि में बंधे हुए अरूप को देखती है। गुणों के परिधि में आवृत्त निर्गुण को। इन इंद्रियों का भी कुशलता से यदि उपयोग हो और इनमें भी मनुष्य न फंसे, इनसे उपजने वाले संवेदनों में फंसे नहीं, संवेदनों को देखे। उसमें से होने वाले सुख की मुसकान और दुःख के आंसुओं को खूब देखे, रोके नहीं। न मुसकान को रोके, न आंसुओं को छिपाए। ऐसे यदि मुक्तता से उसमें से मनुष्य आगे बढ़ा तो और एक करण है, और एक इंद्रिय

है जिसको कहते हैं मौन। मौन भी इंद्रिय है। जिस प्रकार वाणी इंद्रिय है इस प्रकार मौन भी एक करण है, एक इंद्रिय है।

तो पंचकर्मेन्द्रियां देखी, उनका संबंध देखा, उनसे होने वाले संवेदन देखे। ज्ञानेन्द्रियां देखी, उनके जो गंतव्य स्थान, उनको देखा, उनसे उठने वाले संवेदन देखे। अब देखेंगे कि ये सब जो हैं, ये शांत रहने पर और एक इंद्रिय खुलता है। यदि कहूं कि परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी चारों वाणियों से सूक्ष्म वाणी मौन है, वाणी ही है पांचवी। जैसे जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या इन चार अवस्थाओं के परे 'सहज' नाम की जो अवस्था है, वो भी अवस्था ही है। अवस्था हम चार नहीं कहते, पांच कहते हैं, वो भी अवस्था है।

जहां तक अवस्था या दशा इन शब्दों का प्रयोग हो सकता है वहां तक मुकाम नहीं है, यात्रा में ही है। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां स्वस्थ और शांत हों और मौन नाम के करण का काम शुरू हो, ये है ध्यान की बैठक। मौन नाम के करण से, इंद्रिय से परिचय पाना है। मन की कोई भी क्रिया ध्यान नहीं। जिस क्रिया में मन का विनियोग करना पड़े, बुद्धि का विनियोग करना पड़े वो ध्यान नहीं है। त्राटक करना ध्यान नहीं है, जप करना ध्यान नहीं है, विग्रह पर दृष्टि एकाग्र करना ध्यान नहीं है। जहां तक रूप देखा जाय, रंग चीन्हा जाय, स्वाद परखा जाय, स्पर्श निरखा जाय, वहां तक मन काम कर रहा है। जहां तक अनुभूति का ग्रहण हो वहां तक मन की क्रिया है। फिर वो अनुभूति बाह्य इंद्रियों से, बहिर्मुखी इंद्रियों से प्राप्त होती है या अंतर्मुखी इंद्रियों से प्राप्त होती है, ये विषय गौण है। लेकिन जहां तक अनुभूति ग्रहण होती है, जिसको इंद्रियातीत अनुभूति बहोत धीमे भाषा में लोग बोलते हैं, अनुभूति और इंद्रियातीत हो ही नहीं सकती। अनुभूति तो है, व्यक्त की नहीं अव्यक्त की। विषय बनने के लिये कोई वहां विश्व न हो तो अनुभूति कैसे? स्वमीलन का सेवन, ग्रहण, धारण न हो तो अनुभूति कैसे? उसको परखा न जाय, बाकी जीवन से अलग उसका बोध न हो विवक्षित रूप से तो वो अनुभूति कैसे? इसलिये जहां तक अनुभूति का क्षेत्र है और अनुभूति का संवेदन उठता है, वहां तक मन काम कर रहा है और मन की कोई भी क्रिया बहिर्मुखी, अंतर्मुखी - ध्यान नहीं।

अब जप करने से या त्राटक करने से मन की शक्तियां नहीं खिलेंगी ये तो बात नहीं है। मन की सभी शक्तियां हमें आज मालूम नहीं हैं, विदित नहीं हैं। उनका हम उपयोग नहीं कर रहे हैं। तो मन की सुप्त शक्तियों को, अव्यक्त शक्तियों को व्यक्त करने के साधन हैं। जप हो, त्राटक हो, तप हो, एकाग्रता का, कॉन्सेंट्रेशन का अभ्यास हो - ये सब शक्तियां विकसित होंगी - अनुभूतियों का ऐश्वर्य और भी आप ले सकेंगे। उसमें अहंता का रस उंडेलकर के उलझे हुए रहेंगे। आज जो मित्र आये हैं जिन्होंने पहले, जो पहले मेरे साथ बैठे नहीं हैं, सुना नहीं हैं, उनके लिये ध्यान के विषय में मेरी जो दृष्टि है उसको रख रहे हैं कि मन की क्रिया है तब तक ध्यान नहीं। अनुभूति का बोध है तब तक ध्यान नहीं। ध्यान अवस्था है समग्रता की और मौन केवल द्वार खोलता है। मौन का जो करण है वो काम करेगा।

बाकी पहले ये सब शांत हो और मौन काम करे याने क्या? आकाश में वायू का विहार और घटाकाश में मौन का विहार - एक ही बात है। भीतर जो स्पेस है, जो आकाश है, जिसको आप लोक घटाकाश कहते हैं, मठाकाश कहते हैं, अंतर-आकाश कहते हैं। विज्ञान की भाषा में 'द इनर स्पेस' कहते हैं, सायकॉलॉजिकल स्पेस, सायकिक स्पेस कहते हैं। इसमें अवधान का विहरना, निरीक्षण नहीं है, परीक्षण नहीं है, अटेन्शन है, अवेअरनेस है। इसलिये मैंने उसको वायू के स्पंदनों के रूप में कहा कि आकाश में वायू का स्पंदन और भीतर के आकाश में अवधान का स्पंदन एक जैसा है। क्योंकि मौन में सुषुप्ति तो नहीं है। मौन में जागृति है। जागृति है लेकिन प्रतिक्रिया नहीं है। इसलिये अवधान का स्पंदन कहा।

तो कहते हैं कि मौन होने के बाद कुछ समय तक उस अवधान के स्पंदन जो हैं, ये अवधान के स्पंदन काम करते रहते हैं। सुषुप्ति में भी तो अवधान है। तो सुषुप्ति में जो अवधान है, अवेअरनेस है और मौन में जो अवेअरनेस है, उनके बीच जितना भेद है वो मिटता चला जाय, जैसे वो मिटेगा और जितना वो मिटेगा उतना मौन परिशुद्ध होगा। अब सुषुप्ति में इंद्रियों का होश नहीं है, लेकिन जागृति है। मौन में साक्षित्व है। साक्षित्व से शुरू कर के विशुद्ध जागृति तक जाना है। विशुद्ध जागृति में साक्षित्व भी नहीं है, क्योंकि साक्षित्व एक भाव है। कर्तृत्व गया, भोक्तृत्व गया और साक्षित्व आया, इतने से विशुद्ध जागृति तक नहीं पहुंचते हैं, वो मिश्र जागृति है, मिश्रित है। तो ध्यान की अवस्था तक पहुंचने के लिये जो यात्रा शुरू होती है, वो मौन नाम के मुकाम से शुरू होती है।

आप जाते हैं न, बद्रीनाथ जाते हैं, कहते हैं कि जोशी मठ है आखरी, फिर जोशी मठ से आगे जाती है बस। या केदारनाथ जाना है तो कहते हैं कि रामपुर तक बस जाती है। फिर वहां से आप सीतापुर पैदल जाइये। फिर सीतापुर से चढाई शुरू होती है। वैसे मौन के बाद चढाई शुरू होती है, जो चढाई की नहीं जाती। ये सब दृष्टांत एक देशी हैं, शब्दों को मेरे मत पकड़िये। जैसे जो शब्द दिखेंगे उपयोग में लाती हूं। तो मौन ये अंतिम, क्रिया का अंतिम मुकाम मौन है। क्योंकि साक्षित्व भी सूक्ष्म क्रिया ही है। साक्षित्व भी शांत होता है। तब जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या से भिन्न एक अवस्था, तब वाचा और मौन से भिन्न एक अवस्था, क्रिया और अक्रिया से भिन्न एक अवस्था, देहभाव और आत्मभाव से भिन्न एक अवस्था का जन्म होता है।

मैंने कहा था कि बोलूंगी नहीं, छः से साडे छः बैठेंगे शामके। लेकिन क्या करें प्रेम आपका बुलाता है। आपका स्नेह मुझे बैठने नहीं देता। लगता है दो दिन के लिये पता नहीं क्या क्या दिक्कतें सहन कर के लोग आये हैं। मैं उनकी क्या सेवा कर सकती हूं। जो है सो बता दे। इससे आगे की बात कल करेंगे।

भजन गाने लायक आवाज तो नहीं मेरी गई थकान भी है लेकिन एक सुना देती हूं। क्योंकि कल तक तो इतना भी शायद नहीं गा सकूं।

मेरो कोई नहीं रोकनहार मगन भई मीरा चली।
मेरो कोई नहीं रोकनहार, मेरो कोई नहीं रोकनहार

004,V3-1971- Mt.Abu-Talk -Swajan Milan-02-07-1971

मित्र मुझ से सहयोग करें यह निवेदन में कहा गया। 'सहयोग करें' याने क्या करें? 'सख्य भाव से भर दें' याने क्या करें? चलने वाले से सहयोग करना याने साथ चलना। जागने वाले से सहयोग करना याने उसके साथ जागते रहना। प्रेमी से सहयोग करना याने स्वयं प्रेमी बनना। सत्यनिष्ठ से सहयोग करना याने सत्यजीवि बनना। दुसरा क्या सहयोग हो सकता है? १९६३ में जब बनारस का निवास समेटकर अर्बुदाचल आना हुआ तो अर्बुदाचल में कोई जानता नहीं था हमें। और तब से आज तक स्वजनों ने जिलाया। जिनको ये सब हमारी आविष्कृतियां देख कर परम आनंद होता, वो हमारे बापूजी तो चल बसे, त्रिकमलाल महासूत्रा। ये तो उनका प्रताप कि उनके सारे परिवार ने हमको इस प्रकार उठा लिया और सम्हाल लिया कि ठकार परिवार याद भी न आवे। तो सहयोग तो किया न। बंबई में ये चंद्राबेन, वो वसुभाई, वो लालूभाई, वो बेद्राबेट इनके परिवार आज पंद्रह वर्षों से सहयोग तो करते ही हैं। ये बड़ी बहन जैसी चंद्राबेन खडी न होती १९५५ से, तो भूदान आंदोलन में काम कर रहे थे तब भी सुख से बिचरना मुष्किल होता। तो सहयोग तो हुआ। ये दिनकरभाई पता नहीं कैसे, कहां से भगवान की प्रेरणा से चले आये तो विमल बहन की किताबें हिंदुस्थान में भी बिकने लगी, अपना सारा गुडविल उसके पीछे लगाया। कष्टोंको सहते हुए दुकान में अपने काम के साथ वो भी कर लेते हैं। ये दौलतभाई त्रिवेदी, नाम किन किन के गिनाऊं? ये सुनंदाबेहेन, ये प्रभा मर्चंट, तो ये तो सम्हालते आये हैं। ये सहयोग तो है ही। ये सहयोग हमारे योग्यता से भी शतवार अधिका। और ये सहयोग आप करेंगे, प्रभु आप से कराएंगे। उनके हाथों में जीवन के सूत्र बचपन में सोंप दिये तो किसी न किसी सज्जन के हृदय में प्रेरणा देकर जिलायेंगे और कुछ प्रारब्धवश प्रवृत्ति कर ली है तो करा लेंगे। तो कृतज्ञता उसके लिये है चित्त में लेकिन सहयोग से अभिप्राय वो नहीं। ये बच्चुभाई आ गया है, शिविर भी होंगे, ये आजकल हमारा ढोलकावाला अरविंद और उसकी पत्नी इनको भी कुछ हमसे प्यार हुआ है, तो सभी लोग हाथ लगाते हैं, उंगली रखते हैं और चलता है काम।

तो ये बहिरंग जीवन जो है, इसमें सहयोग होता रहेगा। जैसे अपने ग्रहस्थाश्रम को, परिवार को आप चलाते हैं वैसे स्नेहवश इसको भी चला लेंगे आप, जैसे चला रहे हैं। उससे भूख हमारी शांत नहीं होती। बडे लालची व्यक्ति हैं। सज्जन लोग आप मिलें, ये सम्हाल लेते हैं। लेकिन ये बाहर के साथ से संतोष नहीं होता। जरूरतें पूरी होती हैं, वो प्रारब्ध कहीं न कहीं से करा देगा। लेकिन संतोष नहीं होता, प्यास नहीं बुझती। वो गन्ना मीठा लगा तो जड मूं से खाते हैं वैसा कुछ मेरा

आपके बारे में है, के वो बहिरंग में साथ देते हैं अब अंतरंग में साथी कैसे बने? क्योंकि सब तो भीतर पडा है। वो कहते हैं न कि कहीं किसी राजकन्या के प्राण पोपट में रखे थे, किसी के कहीं रखे थे। वैसे हमारे प्राण शरीर में तो हैं, नहीं हैं ऐसा नहीं कह सकते, अत्युक्ति होगी। देह धारण किया है तो वहां भी हैं पडे, लेकिन सत्व जो है वो सत्य में है, प्रेम में है, करुणा में है, वो मैत्री में है, वो आत्मरति में है। अब उस सत्व में आप साझीदार बने। आपकी दोस्ती वहां हो, उस गहराई में।

बाहरसे हाथ में हाथ मिलाएं या आप चरण में सिर लगाकर प्रणाम करें, गौण है। सख्य का असल निर्देश वहां नहीं होता। कोई भाउक है तो पांव पड़ेगा, कोई भाउक नहीं है तो ऐसे भी हाथ जोड़ लेगा। कोई बहोत प्रेमी है तो आलिंगन में, बाहों में हमें धर लेगा, ये तो गौण है। याने पांव में प्रणाम नहीं करेगा, सिर नहीं रखेगा तो सख्य होगा ऐसा मत समझिये और हाथ पकड़कर के हाथ मिलाएगा तो उसकी श्रद्धा हमपर नहीं है, ये भी मत समझिये। ये तो अपनी अपनी इमोशनल इडिऑसिंक्रसी की सहज अभिव्यक्तियां हैं। इनको बहोत महत्व मत दीजिये और इन पर से एक दूसरे का जजमेंट और निर्णय, मूल्यांकन मत कीजिये। नहीं तो आप गलती में चले जाएंगे, धोखा खाएंगे। ये हरेक की रुचि के अनुसार छोड़ दीजिये। उसका इतना जान लीजिये की हमारे पास उसमें श्रेष्ठ, कनिष्ठ कोई भाव नहीं। कोई गले मिलता, कोई हाथ मिलाता, कोई पीठ ठोकता, कोई बाहुओंमें भरता और कोई पांव पर भी मस्तक रखता। तो पांव हमारे मस्तक से कम पवित्र नहीं हैं और मस्तक पांव से कम पवित्र नहीं है। सब समान ही है। आपकी काया संपूर्ण पवित्र है हमारे लिये वैसी ये भी आप के लिये होगी। ये अन्योन्य प्रेम है। कोई जैन परिवार में है, उसके संस्कार अलग होंगे; कोई हिंदु परिवार का आया, अलग होंगे; कोई वैष्णव है, अलग संस्कार होंगे; कोई शैव है, अलग संस्कार। ये सब संस्कार जिस दिन छूटेंगे, उस दिन तो बहोत आनंद की बात है। लेकिन इस वक्त इस पर मत जाइये। सख्य का सत्व कहीं और है। जागने वाले का सख्य स्वयं जागते रहने से ही होगा। बारा महिने आप जहां रहना है, वहां आपका जीवन सत्यनिष्ठ बने, वहां आपका जीवन आत्मावलंबी बने तो वो सख्य होगा। प्रारब्धवश आपका देह कहां और हमारा शरीर कहां है, कहीं भी क्यों न पडे रहें। ये हेमा बहन भराली, पता नहीं दस बारा वर्ष के बाद ये भी, लेकिन मैं जानती हूं कि हृदय से हम मिले हुए थे। जीवन के क्षेत्र अलग होते हुवे हृदय से मिले हुवे, इसलिये अवसर मिला तो ये लोग दौड़ कर आये कि चलो चार दिन आबू रहें। ये लक्ष्मी, ये निर्मल, इसका नाम भूल गयी - देवी। तो एक दूसरे के हृदय में बसना, ये है सख्य और सहयोग।

मैं जब कहती हूं कि आप मेरे साथ सहयोग करें, तो उसका भीतर से अभिप्राय ये है कि ऐसी ही आत्मरति में आप जीयें। कर्म निर्झरा के लिये जहां रहना होता है, प्रारब्ध क्षय के लिये जहां रहना होता है वहां आप रहें। जिस दिन अनुग्रह प्रभु का होगा तो सर्व संबंध का तीक्ष्ण बंधन छेदकर आप निकल पड़ें। वो अनुग्रह आप पर हो, लेकिन तब तक आप जहां हैं वहां से सहयोग कैसे करेंगे? आप के जीवन में असत्य झर जाय, पतझर की ऋतु में वृक्षों के पत्ते झरते हैं ऐसे झर

जाय। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा ये सब जो जीर्ण विकार हैं, शीर्ण विकार हैं ये सब झर जाय। तो निष्कर्ष वृक्ष के जैसी जब आपकी चेतना खड़ी होगी, तो वो होगा हमारे साथ सख्य। सख्य विमल बहन के साथ नहीं है। ये साडेतीन हाथ देह और ये नाम और रूप, इसका का क्या? ये तो ठीक ही है, आज है कल नहीं भी रहेगा। लेकिन जब तक हम आपके बीच हैं तब तक इससे मौका उठाइये। एस्केलेशन ऑफ स्पीड होने दीजिये।

किसी के चित्त में सहयोग शब्द के बारे में गलतफहमी न हो इसलिये ये साफ करती हूं। कोई कार्य बढाना होता, फंड इकठ्ठा करना होता तो लाख दो लाख का फंड इकठ्ठा करना यहां जो सब मित्र बैठे हैं उनके मार्फत बहुत मुष्किल नहीं होता, कब का किया होता। हमारे परमानंद भाई ना १९६५ से मेरे पीछे हैं कि ये तुम्हारा क्या जीवन है, तुम्हारा कोई अखबार होना चाहिये, कोई वीकली होना चाहिये, फंड होना चाहिये। मुझे अनुमति दो तो मैं फंड इकठ्ठा कर देता हूं। शंकरलाल बँकर मेरे पीछे पड़े थे, मैंने कहा ये मेरी भूमिका नहीं, मेरा रोल नहीं। अनिश्चितता में ही मेरा जीवन अब तक चला और चलता रहेगा, मुझे अनिश्चितता में आनंद है और मित्रों के हृदय में बसी हूं तब तक सुरक्षित हूं। मित्रों के हृदय में न बैठूं तो बैंक बैलन्स में बैठकर वहां की सुरक्षा, जो मृत है, जड है, उसमें मेरे जीवन का आनंद नहीं। उससे अन्न, वस्त्र तो मिलेगा लेकिन प्रेम कहां मिलेगा? प्रेम हमारी खुराक। सत्यनिष्ठों का प्रेम हमारी खुराक। आत्मनिष्ठों की मैत्री, उसके लिये हमने हाथ पसारा है क्योंकि इसमें जो हाथ पसारा है उसमें जो आप देंगे वो आपका आप ही को मिलेगा, कहीं जाएगा नहीं। यात्रा करनी है हमारे साथ, याने आपके देह में रहते हुए, आप ही की आत्मा तक आपको पहुंचना है। विमल बहन के साथ कहीं नहीं जाना है। देह की, देह में ही रहते हुए, आत्मा की यात्रा है। वो यात्रा आप करें ताकि कहीं ठोकर लगी, कहीं घायल हुए, तो जो यात्रा कर चुका है ऐसा आपका साथी कहीं हाथ देकर उठा सके। कहीं पांव लडखडाए तो आपको हाथ देकर थाम सके। जब तक साथी आपके बीच है उसका लाभ उठाओ। किसी दिन प्रारब्ध खींचकर हिमालय की गुफा में ही ले जाय या विजन में ले जाय तब तो आपका हमारा मिलन ऐसे ही चला जाएगा, निरर्थक चला जाएगा।

आत्मा ने ले ओळखी अवसर पामे वाज।
वण पाम्या थाला जशो तो शूं रहशे लाज॥

तमारी ने अमारी बन्ने नी, केम के आपणे मित्र छिये। और दूसरी कोई चिंता नहीं, और दूसरी कोई वेदना नहीं। वो विवेकानंद भी तो ऐसा ही हाथ मलते रह गया कि “हाफ अ डझन लव्हर्स ऑफ सेल्फ रिअलायझेशन अँड आय विल चेंज द फेस ऑफ इंडिया।” छः हो सच्चे जिज्ञासू तो हिंदुस्थान का काया पालट करूंगा। उसको पता नहीं मिले कि नहीं? श्रीमद राजचंद्र तरसते रहते थे। स्वभावलाल थे, सुभाषभाई थे, रघुराजस्वामी थे, अंबालाल थे, जुठाभाई थे, तरसते रहते थे श्रीमद् कि आत्मा की बातें कौन करेगा? और हमसे करेगा एक दिन, दो दिन, तीन दिन नहीं, हमारे साथ ईडर में और वडवा में घूमते हुए नहीं, खंवात में जाते हुए नहीं, अपने अपने घरों में,

व्यवसाय करते हुए, पत्नी, पुत्र, पिता के साथ बोलते हुए आत्मरति कौन रखेगा? ये प्यास थी उनकी। गोपी का कृष्ण के लिये विरह और श्रीमद् का आत्मार्थियों के लिये विरह एक कोटि का था। ऐसी कुछ विरह की दशा हमारी है। आत्मार्थी को छोड़कर दूसरे का संग प्रिय नहीं लगता।

तो आपका आत्मार्थी और श्रेयार्थी बनना ही हमारे साथ सबसे मौलिक सहयोग करना है। प्रारब्ध से होगा देवक्षयः, वो क्षय करने के लिये आपकी जीविका, आपका कुटुंब, आपका गृहस्थाश्रम, जो कुछ करना है वो कीजिये और बाह्य प्रवृत्ति जो बहुत संक्षेप में हमने रखी और संक्षेप में ही प्रभुकृपा से रहे, बहुत सीमित रखी है, उसमें सहयोग करते हुए वो सहयोग यदि आपकी साधना बने तो ही करे और साधना न बने, उपाधि बने तो ठुकरा दीजिये इस प्रवृत्ति को और उस विमला बहन को। जब हमने कहा कि ये विमल बहन का काम नहीं, अपना काम है तो अपने काम से मतलब अपनी साधना। पुस्तिका का संपादन करते हुए ये साधना है, ये अर्चना है, ये पूजा है, ये जप है, ये ध्यान है, ये वृत्ति रह सकी और संपादन करते करते कुछ सीख सके तो करो। नहीं तो एक अक्षर प्रकाशित न हो तो उसका रंजमात्र खेद यहां नहीं है। बोलते समय शब्द जिसके लिये बोला गया वो बोला गया। न छपे तो चिंता नहीं। छप गयी तो विरोध नहीं। लेकिन वो संपादन का कार्य यदि आपकी साधना नहीं है और उसमें आपकी आत्मोन्नति नहीं होती है तो विमल बहन के लिये मत कीजिये। ऐसी विमल बहनें हजारों आयेंगी, जायेंगी; आपके आत्मा का नुकसान हो तो कौन भरेगा?

शिविर की व्यवस्था करनी है, उसमें यदि मित्रों के साथ मिलने में, प्रवचन सुनने में ये भाव रहता है कि इसमें कुछ साधना होगी, तो कीजिये। नहीं तो हम ये काम कर रहे हैं, हम काम कर रहे हैं, देश का कर रहे हैं इस का एक अहंकार होता है, धर्म का कर रहे हैं इसका अहंकार होता है। उस प्रकार एक अध्यात्म का काम कर रहे हैं किसीका, ये भी अहंकार होगा। फिर आपस आपस में तुलना होगी, कौन ज्यादा करता है, कौन कम करता है। फिर ईर्ष्या हो सकती है। स्वाभाविक है कि काम करने वाले को हमारे पास दैहिक रीति से ज्यादा आना जाना होगा, बोलना पड़ेगा, फिर उसकी ईर्ष्या आपस में होगी। नुकसान होगा, देखिये न कितनी क्षति हो और कोई हमारे प्रारब्ध काटने के लिये हमको जो करना पड़ रहा है उससे मित्रों का यदि आत्मा का नुकसान हुआ तो हम कहां भरने जाएंगे भाई? हम अपराधी न साबित होंगे भगवान के सामने? प्रवृत्ति की जरा इच्छा होती तो भूदान का नेतृत्व पडा हुआ था। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष का मेरे पास लंबा पत्र है एक, हमारे मुरब्बी भाई जान से बनारस में आया। पुराने मित्र हैं मेरे जगन्नाथ, अध्यक्ष - “कम बैंक, कम बैंक टु गिव्ह स्परिच्युअल गाइडन्स टु द होल ऑफ सर्व सेवा संघ। वी आर वेटिंग।” तो प्रवृत्ति करनी होती तो बहुत क्षेत्र था। प्रवृत्ति करनी नहीं और जन-विमुख होना नहीं, ये है मेरी अग्नि-तपस्या। इसमें आपका, मेरा कुछ न कुछ ऋणानुबंध होगा तो हम मिले हैं। कुछ भवभवांतर का संबंध होगा तब मिले हैं। इस मिलने को, अपने संसार को, गृहस्थाश्रम को भी प्रवृत्ति मानकर वहां मत फंसिये और हमारे प्रारब्ध प्राप्त जो कुछ है उसमें मदद करते हुए

उसमें भी मत फंसिये। दोनो तरफ से मत फंसिये आप। फंसना नहीं, समय थोडा है। आपका है कि नहीं थोडा, मालूम नहीं; हमारा है थोडा।

सख्य में बड़ी जोखम है। उस जोखम को इस तरफ से उठाया गया है, उस तरफ से उठाना है, दूसरी तरफ से। वो जोखम ये है कि बराबरी के नाते से जो बरतते हैं, प्रेम से, बहोत आजादी से बरतते हैं। तो उस आजादी का, उस स्वाधीनता का उस समता के नाते का उपमर्द नहीं होना चाहिये। सख्य में आश्रय नहीं है, आधार नहीं है लेकिन साथ है, सत्वार है। तो जो समय मिलें साथ बैठने का, साथ बिताने का, उसके एक एक पल का गंभीरता के साथ उपयोग हो। बादर्दी/(बात अर्धी) होती न तो ईझिली अक्सेसिबल नहीं रहते हैं। पांच मिनिट मिलेंगे, दो ही मिनिट मिलेंगे तो लोग उनके पास जाकर कॉन्सेन्ट्रेटेड बात रखते हैं अपनी कर्चे। लेकिन जो ईझिली अक्सेसिबल फॉर ट्वेंटिफोर अवर्स, कोई रुकावट नहीं, उस व्यक्ति के साथ हमारे अनवधान के कारण अन्याय होने की संभावना रहती है, कि जो बातें महत्व की नहीं हैं वो हम करें, अपनी प्रायॉरिटीज का विचार करके, सोच करके न जाय या फॉर्मैलिटी में, एटिकेट में, शिष्टाचार में समय निकल जाय। या अपनी जो आदते हैं उनके अनुसार अतिशयोक्ति में समय निकल जाय। तो ये अपना जो अल्पकालीन भी सहवास होता है, वो सहवास होना चाहिये, सान्निध्य होना चाहिये। अपने आत्मोपलब्धि के प्रश्न को छोडकर, आत्मावलंबन के, आत्मरति के प्रश्न को छोडकर अन्य जो प्रश्न हैं, जो आप खुद जिनको हल कर सकते हैं और जो करने ही पडेंगे आपको खुद को, उसमें समय न खोया जाय। ये भी तो हो सकता है, ये भी एक सहयोग का प्रकार हो सकता है।

क्योंकि आत्मारथी के मार्ग में कठिनाइयां, दिक्कतें, मुसीबतें आने वाली हैं। आप ये न समझे कि आप के जीवन में आती हैं और यहां नहीं आती होंगी। यहां भी देह है उनका। भारत की अलग हैं, सीलोन की अलग हैं, युरोप, अमेरिका की अलग हैं। जहां जहां जाना होता है, वहां की समस्याएं हैं, आप सुनेंगे उसमें से सँपल के लिये भी दो चार बताऊं तो आप कांप जाएंगे। इसलिये हम तो कभी बोलते ही नहीं किसी के पास। तो ऐसे अपनी मुसीबतों को सहन करना यही तो पंचाग्नि साधन है, और क्या होता है? नर्मदा किनारे बैठकर के, तपी हुई रेत में, मध्यान्ह के समय सूर्य के किरणों का ताप लेना और अग्नि जलाना ये नहीं पंचाग्नि साधन। बहुत स्थूल हुवा। ये संसार पंचाग्नि साधन ही तो है और क्या? साधकों के लिये संसार में रहना, लंका में बिभीषण का रहना और भोगवादियों के बीच आत्मारथियों का रहना एक जैसा ही तो है भाई। ये पंचाग्नि साधन ही है। तो उन सबका आहार बनाकर के पचा जाना पडता है। ये विषपान है। समस्याओं का आहार बनाके अच्छी तरह से चबा चबा के उसका रस लेकर के हजम करना पडता है। कठिनाइयां आयीं, नहीं सीखे कुछ। मुसीबते आयीं, कुछ न सीखे। विरोध हुआ, कुछ न सीखे। प्रेम मिला, कुछ न सीखे। अपरोश मिला, कुछ न सीखे। ठोकर खाई, कुछ न सीखे। अरे तो श्वास श्वास में सीखना है यहां, यहां तो सीखने के लिये आये हैं। सीखने में आत्मविश्वास कैसे, आत्मग्लानी कैसे? सीखने

में उत्तेजना कैसी? कोई चीज सध गयी तो उत्तेजना कैसे, नहीं सधी तो निराशा कैसी? तो चित्त को निरद्वंद्व रखते हुए, इनमें से पार होना है।

हां, कैसे सवाल पूछे के भाई सत्यनिष्ठा से ये करने गये तो उसका ये परिणाम निकला, तो कहीं सत्यनिष्ठा में गडबडी तो नहीं हुई? याने सत्यनिष्ठा आचरण में लाने में कहीं कमी रही कि ऐसा परिणाम निकला? अब ये संसार का प्रश्न नहीं, ये तो आत्मरति का प्रश्न हुआ। याने सत्य को, प्रेम को, आत्मनिष्ठा को व्यवहृत करते हुए जो कठिनाइयां आयीं उसे हमारे साथ जरूर रखना, तो अपन बात करें, चर्चा करें उनकी।

तो सख्य में जोखम तो है। सखा न बने तो व्यक्ति-प्रामाण्य शब्द प्रामाण्य बननेका जोखम, जो कि इस देश में बहुत सरलता से, यहां इस देश में भगवान बनना भी क्या, कितनी देर लगती है? वो भी बना जा सकता है। संत कहलाने में क्या देर है, महात्मा कहलाने में क्या देर है? (चुटकी बजाते हुए) ऐसे खेलो, साउथ के युनिफॉर्म लाओ कि सब साजो सामान इकठा कर के सब कर लो। ऐसा खेल तो अपनेको नहीं करना। आप जो, आप हमारे साथ जो बैठे हैं वो बड़े गंभीर प्रकृति के लोग हैं ऐसा हम श्रद्धा, इस श्रद्धा से हम बोलते हैं। **अ क्लास लोको** तमाशा तो नहीं बनाना। विचारों की सर्कसें और कसरतें नहीं करनी है और भावनाओं का कोई तमशा नहीं बनाना। इमोशनल पार्क नहीं, इंटेलेक्चुअल अँक्रोबॅटिक्स नहीं, अँकॅडेमिक ड्राय डिस्कशन्स ये तो जीवन रसिकों का मीलन है। कम से कम हम ऐसी श्रद्धा रखते हैं। अभिजात जीवन रसिक ही आत्मार्थी बन सकता है। बाकी जिनको छिछले पानी में छप छप करने में आनंद आता है, वो कहीं भी चले जाय।

तो अपना काम समझकर करें याने, संसार गृहस्थाश्रम चलाना भी आपका काम नहीं, आपका काम तो आत्मार्थी बनना है। अपना काम इन शब्दों पर हमारा श्लेष था। विमल बहन का काम कहने से प्रवृत्ति हो जाएगी, अँडिशनल वर्क टु द ऑलरेडी इनफिनिट वर्क दॅट यू हॅव। फिर ये जो छोटासा अपना काम है उसको आप नापेंगे, तोलेंगे। फलाने का काम कैसे चल रहा है, उसके पास में ये सुविधा है, उनका तो ये खोटा है। फिर उनको संसार के नाप तौल लगाएंगे आप। उनका रंगरूप, उसकी आकृति, शिविर की हो, चाहे पुस्तक की हो, चाहे बिक्री की हो, चाहे और भी कुछ हो। इन सब की आकृति आप संसारी आकृतियों कि जैसी बनाना चाहेंगे। और मैं सावधान न रहूं तो मेरा पांव फिसलेगा, आप सावधान न रहें तो मैं आपका शोषण करूंगी - ये कैसे होने दें? इसलिये जैसे स्वयं को चेताती रहती हूं वैसे आपको भी चेता दूं, कि दोनों में से कुछ भी हो तो हट जाना। वहां एक पलभर के लिये नहीं रुकना। सबसे सर्वोपरी लॉयल्टी अपने आत्मा को, और किसी को नहीं। इंडिविज्युअल्स नेव्हर काऊंट।

साधना पर सख्ती है। विनोबा के काम को, भूदान को, विनोबा का काम समझकर मैंने कभी नहीं किया। छः-सात वर्ष जो रही, ये जब तक मेरे साधना के रूप में जो चल सका, किया। वो तो

हो गया, किया नहीं। इसलिये करने का अहंकार नहीं आया। ये बैठे हैं बंबई वाले मित्र। चौपाटी पर सत्तर हजार की मीटिंग अँड्रेस करनी है कि ये हेमावहन करेगी, पचीस-तीस हजार की गौहाटी में अँड्रेस करनी है कि पांचगतियों के साथ बोलना है इसका कोई वृत्ति पर कंप नहीं उठता था, स्पंदन नहीं उठता था। क्योंकि सत्तर हजार के मीटिंग में बोल रहा था वो वक्ता नहीं था, साधक था। और दोन, तीन लाख एकर जमीन भी इकट्ठी हो गई तो वो भूदान कार्यकर्ता नहीं था, जीवन साधक था। जीवन साधक कहीं से भी गुजरे, किसी भी परिस्थिति में से, उसकी दृष्टि और वृत्ति आत्मा पर केंद्रित रहती है, सत्य पर केंद्रित रहती है। आत्मा एक नाम प्रचलित है इसलिये उपयोग कर रही हूँ। ऐसी आपकी दृष्टि रहे आत्मशोधन पर, आत्मरति पर। उसमें ये सब बैठता हो, जरूर हो जाय आपके हाथों से, न बैठता हो तो मैं कभी नहीं पूछूंगी कि आप कल काम करते थे, आज क्यों नहीं कर रहे। आप मेरे सखा और मित्र वैसे ही रहेंगे, जैसे आज हैं। आप के मन में ये संदेह कभी न हो।

हमारे लिये न ये प्रवृत्ति है, न निवृत्ति है। क्योंकि जिसके पास प्र और नि ये उपसर्ग रह सकते वो दोनो गायब हो गये। लेकिन आपके लिये कोई प्र या नि ऐसे उपसर्ग खड़े कर दूँ जीवन में तो मुझसे तो बड़ा अपराध हो जाएगा। ऐसे अपराध कि भागी नहीं होना चाहती। इसलिये निवेदन में बड़ी व्यथा है कि काम बढ़ता चला, जो मित्र मेरी मदद करते हैं, दौड़ते हैं इधर उधर, उनके लिये मैं उपसर्ग तो नहीं बन रही हूँ? उनके आत्मरति की तरफ से नजर तो नहीं हट जाएगी? इसलिये निवेदन और बोला शब्द शायद हृदय में धारण हो सके, न हो सके इसलिये ये पहली बार है कि, मैंने लिखा है, इसको भाई छपवा लो और जो आयेंगे उन मित्रों के पास रहे ताकि भूल न जाय। इस निवेदन का जो सार है, जो भूमिका है, उसमें विमल बहन कभी भी च्युत होने लगे तो उसका हाथ रोकने का अधिकार इतने सब स्वजनों को दे दिया। अब हम हो गये निश्चिंत। विमल बहन की तरफ से निश्चिंत हो गये। आप अपनी जानो। सखा का धर्म हमने पालन किया। अब सख्य को निभाना आपका जिम्मा है। वो मुंबई, वो अहमदाबाद, वो गौहाटी में, बडोदा में, जहां भी आप रहते हों, वहां अपनी जागृति की मात्रा बढ़ना, विमल बहन के साथ सहयोग और सख्य बढ़ना है।

देहनिष्ठों के बीच घिरे हुए रहना, जैसे विभीषण रहता था, उसके होठों पर रामनाम था और दीवारों पर रामनाम था। आपके भीतर आत्मा की जागृति रहे। तो ये आत्मरति की और जागृति की मात्रा आपकी बढ़ती चली जाय तो अपने आप सहयोग होगा। क्योंकि द फ्रिक्वेन्सि ऑफ व्हायब्रेशन्स फ्रॉम विच यू विल लिव्ह, विल बी ट्यून्ड इन विथ माइना। यदि आप घर पर विकारों में, विचारों में, आकांक्षाओं में, वासनाओं में, ईर्ष्या में, द्वेष में डूबें रहेंगे; आपका हमारा मिलन कैसे होगा? वो रेडिओ के बगैर का है। चाबी घुमानेसे ट्यून्स नहीं पकड़ता है वो? उस फ्रिक्वेन्सी को पकड़ लेता है। तो स्पंदनों की जो ऊंचाई, जो उनकी विशुद्धता, जो उनकी गतिशीलता आपकी जैसे जैसे बढ़ती जाएगी वैसे आपके और हमारे बीच का अंतर भौतिक भी नष्ट होगा, क्योंकि आफ्टर ऑल स्पेस अँड टाइम डू नॉट एक्जिस्ट। आपको जो हमारे साथ अंतर

लगता है, वो अंतर निकल जाएगा। फिर हम हमेशा मिले हुए रहेंगे। जैसे तानपुरे लगे हुए रखते हैं तो उनके सधे हुए हैं तंबुरे और वो रख दीजिये, बीच में बैठकर आप प्रणव बोलिये तो बिना उंगली लगाये वो जो तार है तंबुरे के वो छिड़ जाते हैं और उनमें से निकलते हैं, नाद निकलता। वैसे ये जो विश्व चेतना का प्रणव निनादित हो रहा है, वो इस सधे हुए तंबुरे में जिस प्रकार बज उठता है वैसे ही दूसरे तंबुरे में बज उठेगा। अँड देन वी विल बी एबल टुगेदर इन द कॉस्मिक इन्टेलिजन्स, इन युनिव्हर्सल लाइफ, वी विल मीट अँट अ पॉइंट फ्रॉम विच देअर इज नो सेपरेशन। ऐसे बिंदु पर जाकर हमारा आपका मिलन होगा कि मृत्यू भी, देह की मृत्यू भी आपको, हमको अलग नहीं कर सकेगी। इस मिलन की प्यास है हमको। इस सख्य की प्यास। ऊपर उठकर बैठी थी आपका ऊर्ध्वगमन देखने।

ज्ञानेश्वरी ग्रंथ में, एक जगह (१०:५९) ज्ञानेश्वर महाराज लिखते हैं, कि कृष्ण अर्जुन से कहता है – अर्जुना तैसे तुझे हित आघवे। जंव जंव का तुज फावे। तंव तंव आमुचे सुख दुणावे। ऐसे आहे॥ हे अर्जुन, जैसे जैसे तुझे तेरे हित का तुझे बोध होता जाता है, वैसे वैसे हमारा सुख बढ़ता है। जिस अनुताप में तेरा हित तू साध लेता है, उस अनुताप में हमारा आनंद बढ़ता है। हमारे आनंद की चाबी आप लोगों के हाथ में है। ये नहीं कि कृष्णार्जुन संबंध है। दृष्टांत एक देशी है, गलत नहीं समझिएगा। प्रीति का धर्म है ये। यह प्रीति करने की रीत नहीं, वो जागत है तू सोवत है।

उस आत्मनिष्ठा की उत्कटता में जब आप पहुंचेंगे अपने अपने घरों में बैठे, घर याने ये जो पंचमहाभूतों का घर है, इन घरों में बैठे हुए। ये गा रही थी न कौमुदी, “काले गोरे तन जो हैं”, जैसे भी हैं, तो इन घरों में, इन घटों में बैठे हुए। जो उतनी उत्कट आत्मनिष्ठा में और आत्मरति में आप पहुंचेंगे और ब्रह्मचर्य जैसा सत्यचर्य आपका सध जायगा, प्रेमचर्य आपका सध जायगा वैसे वैसे। वह ब्रह्मचर्य शब्द भी मुझे आजकल कुछ कम जचता है, जीवनचर्य कहूं, प्रेमचर्य कहूं, सत्यचर्य कहूं, क्या कहूं, शब्द कुछ बनाना पड़ेगा। मालूम नहीं ऐसे ही होते आदमी क्लिष्ट। तो ये जैसे सधेगा तो जिस प्रेमचर्य में, सत्यचर्य में आप जिसको विमल बहन कहते हैं, उसको परिवार, ज्ञाति, कुल, देश, वंश, सब से उठाकर विश्व आकाश, वैश्विक चेतना के मुक्त आकाश में लाकर रखा, वैसे वो विश्व चेतना आपको भी रखेगी। फिर विरजा का जन्म होगा। यद आरेव विरजेत् तद आरेव प्रव्यजेत्। वो जो विरजा है, वो विरजा हो, वो ही होगा।

छोड़ने से कुछ छूटता नहीं है न। वो यदि परिपक्व आत्मनिष्ठा नहीं है, जिज्ञासा की परिपक्वता नहीं है, तो घर छोड़ना जो है वो हरा पत्ता पेड़ से तोड़ने लायक हिंसा, कष्ट होता है वृक्ष को। आप उसका कंपन नहीं देख सकते हैं, हमको कंपन होता है। कभी कोई तोड़ता है, पत्ता तोड़ता है तो भीतर तो आंख भी भर जाते हैं। क्योंकि उसकी वेदना देख सकते हैं। और हरे के हरे पत्ते रहकर मृत्यू इस शरीर को ले जाय तो बड़ी वेदना होती है न। पत्ता पक गया, पीला हो गया, फिर उसका जो स्टेम है, उसका जो डंठल है, वो अपने आप ही क्षीण होकर के, याने वासना का संबंध जो देह वृक्ष के पास है वो क्षीण होकर अपने आप झड़ जाता है। फिर वहां वेदना नहीं है।

लेकिन हम तो मरने की घड़ी तक हरे ही हरे पत्ते हैं। फिर झड़ते समय हरे बाप, बड़ी वेदना होती है। फिर एक झटका देकर के निकालना होता है। तो यमराज निकालते हैं। अपने आप हम नहीं गिर पड़ते। मृत्यु का फिर वरण नहीं होता है। मृत्यु से फिर निधन नहीं होता। फिर मृत्यु जीवन से अधिक उज्ज्वल महाकाव्य नहीं बनता। वेदनामय, कष्टमय, घृणित-सी घटना हो जाती है।

ऐसा न हो, मेरे मित्रों ये कोई जरूरी नहीं। मरण में अंत होने के बदले नूतन जीवन का प्रारंभ भी हो सकता है। इसलिये आपकी जिज्ञासा, सत्यनिष्ठा की और प्रेम की आंच देकर के खूप परिपक्व होने दीजिये। लेट इट सिमर अँड बॉइल। ये सारी एक एक जो प्रारब्धवश प्रवृत्ति करनी पड़ती है न वो इंधन समझिये, इंधन जो लगाते हैं चूल्हे में। क्या बेटे इंधन ठीक है न? तो वो एक एक जो आपको प्रारब्धवश प्रवृत्ति करनी पड़ती है, एक एक रिलेशनशिप, एक एक संबंध जो मनुष्यका आता है न, वो इंधन समझकर सत्यनिष्ठा के अग्नि में लगा दीजिये और इस पर आत्मजिज्ञासा खौलती हुई रहने दीजिये, परिपक्व होने दीजिये। ये तो चांचणी बनाते हैं तो तार देखते हैं कि पक्का बना है कि नहीं। जहां जिज्ञासा परिपक्व हुई वहां देह की, कुल की, जाति के बंधन में आत्म परमात्मा रखेंगे ही नहीं। यहां कौनसा कर्तृत्व था जो निकाला बाहर? कोई अद्वितीयता और असाधारणता थी कि पांच साल की उमर में प्रभु ने बाहर निकाला, मुक्त आकाश में रखा। यहां स्त्री पुरुष के भेद का भी होश नहीं होता, ऐसी एक देहातीत अवस्था में लाकर रखा। रखेंगे नहीं तो क्या करेंगे, किस लिये है वो? खोट हमारी तरफ है, कचास रखते हैं जिज्ञासा में। वो मत रहने दीजिये।

बात एक कब उठाई थी कि अरविंद को लेकर उठाई थी, कि अरविंद वर्ष में इने गिने समय बाहर आकर दर्शन देते थे। स्पर्श नहीं हो सकता था ऐसे और भी संतों की बात है। ये रामकृष्ण परमहंस, शारदा माई का, शारदा माई के हाथ का बना हुआ भोजन हो तो अनुकूल पड़ता था। दूसरे किसी अशक्त जीवन वाले व्यक्ति के हाथ से जल भी लेते तो बदन कांप जाता था। उल्टी होती थी। ये सारी बातें जो उठी हैं इन में कोई तथ्य है कि निरंतर आत्मरति में जीने वाले व्यक्ति को किससे तकलीफ होती है, लोगों के स्पर्श से? इसका उत्तर हां और ना दोनों है। व्यक्ति यदि तंत्र की साधना करने वाला हो, तंत्रसाधना में शरीर की स्पंदनों की जो अवस्था है साधनावस्था में, वो स्पंदन कुछ गरमी पैदा करते हैं, ऊष्णता पैदा करते हैं शरीर में। जो साधक न हो, वो व्यक्ति आकर, भावावस्था में जो व्यक्ति है उसको स्पर्श करे, जिसकी कुंडलिनी जागृत है ऐसी व्यक्ति का स्पर्श करे तो उसके दो परिणाम- स्पर्श करने वाले की हानी और नुकसान हो सकता है, उसके ज्ञान तंतु अगर कमजोर हों तो उस स्पर्श से अचानक उत्पन्न या जागृत होने वाली जो उत्तेजना है, एक्साइटमेंट है उसको ज्ञानतंतु सहन नहीं कर सकेंगे। हिज नर्व्स सिस्टम विल गेट अ व्हेरी रूड जर्क। उसके रक्ताभिसरण को, उसके श्वासोच्छ्वास को, उसके ज्ञान तंतुओं को, खास कर के मस्तिष्क पर जोर का धक्का लगकर के संतुलन नष्ट हो सकता है। कुछ लोगों के लिये एक हमेशा का डैमेज हो जाता है। बहुत कमजोर हो न जिनके ज्ञानतंतु और शरीर पर भी खाना

पीना ठीक से मिला न हुआ हो, आहार जो है वो ठीक न रहा हो, कमजोर शरीर हो, ज्ञानतंतु कमजोर हो, दिमाग का कमजोर आदमी हो, दिल का कमजोर आदमी हो और जाकर के स्पर्श करे तो ऐसी उत्तेजना एक झटका सा लग सकता है और वो झटका केवल उसके शरीर को नहीं लगता, उसके ब्रेन तक जा कर के वो शॉटर कर सकता है। उसका संतुलन जा सकता है। वो खोया हुआ संतुलन वापस लाने की शक्ति यदि इस तंत्र साधक में हो तो उसको वापस वो ला सकता है। और वो न हो तो? तो वो आदमी तो गया। ये तो स्पर्श करने वाले की हानि और नुकसान।

जिसको स्पर्श किया जाता है, उसको भी झटका तो लगता है। उसको झटका लगता है क्योंकि उसकी जो उत्कटता है, उसकी जो गतिशीलता है, उसको आप अस्सी मील प्रति घंटे चलने वाली मोटर को एकदम ब्रेक लगाओ तो जोर से ब्रेक लगाने से गाड़ी की क्या हालत होती है? वो रुक तो जाएगी गाड़ी, आवाज भी करेगी जोर की। रुकेगी लेकिन कुछ नुकसान तो गाड़ी का होता है। वैसे ही उस व्यक्ति के लिये वो जो स्पर्श है, वो कुछ क्षीणता लाएगा जिसको काँपेन्सेट उसको करना पड़ता है। उसको काँपेन्सेट किये बिना छुटकारा नहीं है। आप समझते हैं अपने आप हो जाएगा रीजुव्हेनेशन, ऐसा नहीं होता है। उसके लिये कुछ तप करना पड़ता है। हठयोगी, हठयोगी अपने मसल्स, नर्व्स सिस्टिम, ग्लैंड्युलर सिस्टिम, स्किन, स्किन तक का प्युरिफिकेशन हठयोगी करता है। श्वासोच्छ्वास का तो करता ही है, रक्त का तो करता ही है, लेकिन त्वचा तक का परिशोधन विरीत का होता है। अब जिनके जीवन में आहार विहार की शुद्धि नहीं है, जिनके जीवन में संयम नहीं है, जिनके जीवन में किसी भी प्रकार का इनर प्युरिफिकेशन हुआ ही नहीं है, बायॉलॉजिकल भी नहीं, सायकॉलॉजिकल भी नहीं, ऐसी व्यक्ति आकर जब, जो भी अभी समाधी से उठ के निकला है बाहर, अरे आंखों से भी स्पर्श करते हैं तो उसका परिणाम होता है। क्योंकि संवेदनशीलता कितनी सूक्ष्म होती है कि दूसरे की आंखे जब स्पर्श करती उसका भी परिणाम हो सकता है। दृष्टि के स्पर्श से त्वचा जैसे जलने पर लाल होती है न, ऐसी हुई है। स्पर्श पर तो जली हुई त्वचा, शायद मेरे साथ रहने वालों ने, कुछ लोगों ने देखी भी है। कि कोई स्पर्श करता कपडे के ऊपरसे तो कभी कभी त्वचा जल जाती है। उसको दो दो दिन क्रीम लगाना पड़ता है। तो इसको कोई बहोत रहस्यमय समझने की जरूरत नहीं, ये होता है।

तो ये प्युरिफिकेशन न किया हो, आखिर साधना है क्या, समग्रता का शोधन ही तो है। तो फिर उसको ठीक करना पड़ता है। अधिक बोलने वाले लोग जैसे विश्रांति लेनी पड़ती है न, मौन करना पड़ता है, गांधीजी करते थे, सोमवार का मौन रखो। कुछ वर्षों तक हमारे जयप्रकाश शुक्रवार को मौन रखते थे। क्योंकि दे हॅव टु काँपेन्सेट बाय फाय देम व्हॉटिव्हर दे हॅव स्पेंट ऑफ देअर व्होकल कॉर्डस् थ्रू एक्सेसिव्ह टॉक। तो लॉरेजेस है, फॉरेजेस है, व्होकल कॉर्डस् है, इन की सब की शक्ति वापस लेनी पड़ती है न। मौन, वैसी वो शक्ति वापस आती। वैसे एकांत में से, फिर ये जो जनसंपर्क में घटित होता है, जनस्पर्श में घटित होता है, उसको वापस लाना पड़ता है। एकांत का समय बढ़ाना पड़ता है। इसलिये एकांत केवल, केवल जनविमुखता के या

आयसोलेशन की वृत्ति से नहीं होता, एक नेसेसिटि बनती जाती है। इसलिये अधिक स्पर्श टालते हैं लोग, अधिक लोगों के साथ रहना टालते हैं, अधिक वाणी का उपयोग टालते हैं।

युक्ताहार विहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा॥ गीता ६:१७॥

कोई लोगों को तुच्छ समझकर नहीं, उपेक्षा भाव से नहीं और जैसा जिसका संबंध का क्षेत्र व्यापक, उतना उसको एकांत का समय अधिक रखकरके इन्टैक्ट रखना पड़ता है। क्योंकि जिस व्यक्ति को प्रभु कृपा से इस मार्ग में कुछ आगे संत जन बढा देते हैं, गुरुजन बढा देते हैं, उसके लिये तो उसका शरीर एक ट्रस्ट है। दूसरों के लिये उसे सम्हालना पड़ता है। युक्त आहार देना पड़ता है, युक्त विहार देना पड़ता है क्योंकि उसका एक श्वास भी वो अपने लिये नहीं ले सकता। ये पथ्य है।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥गीता ३:१२॥

अपने लिये जो कोई करे, चोर है कहा न गीता में। उसका अर्थ, उसका स्थूल अर्थ नहीं, इस घटमें जो वैश्वानर बैठे हुए हैं, उनको आहुति देदो। तो श्वासोच्छ्वास भी एक सेवा बन जाती है, अखंड यज्ञकुंड जगता और जलता है। कल बेहेन ने सवाल उठाया कि क्या इस में कोई तथ्य है। तो तथ्य तो है। इसलिये आप लोग जो चोरवार आये होंगे उनको याद होगा कि चोरवार की शिविर में जब बोलना था तो प्रवचन हुआ कि कमरे में भागकर हम कमरा बंद कर लेते थे। उसका कारण ये था कि चोरवार आने से, भारत वर्ष हम जानेवारी में लौटे, उससे पहले छह महीने शरीर में नमक और शक्कर दोनों नहीं थे। शरीर क्षीण हो गया था। और शिविर में प्रवचन करना या अभी आपके साथ बोलना ये इतनी उत्कटता में बैठकर के होता है कि उसके बाद शरीर में लोगों के साथ बैठकर पर्सनल इंटरव्यू देने की, बोलने की, उतना संपर्क और स्पर्श सहन करने की शक्ति नहीं रही। क्योंकि उसको काँपेन्सेट करने के लिये जो एक रिझर्व फोर्स चाहिये, शरीर में नहीं था उस समय। अभी आप के साथ बैठकर के कल तो खा भी लिया वहां बैठकर। शरीर में कुछ बल आया है वापस इसलिये, नहीं तो ये भी नहीं कर सकते। लाचारी से फिर अलग बैठकर के हॉर्लिक्स बनाओ, तो कुछ ओट्स स्टीम करके थोडासा दे दो, वो खा लो थोडासा, अकेले को दे दो, नहीं आएंगे, सब के साथ नहीं खाएंगे। एक लाचारी आ जाती है कि जितना चाहिये उतना संपर्क फिर व्यक्ति रख नहीं पाता। क्योंकि कार्य करने का क्षेत्र व्यापक होता, ऑस्ट्रेलिया से लेकर अमेरिका तक। केवल पत्र व्यवहार नहीं, जाना भी हो, बोलना भी हो। इतने अनंत संस्कारों के व्यक्तियों के साथ तादात्म्य भाव से रहना भी हो। यहां आप है, एक संसार में सब से अधिक व्यक्ति दो दिन के लिये आप हैं। लेकिन कैलिफोर्निया में बैठें तो आपकी याद भी नहीं आती, इतनी भी नहीं आती। वो मेरे लिये फिर सबसे अधिक, अत्यंत महत्व के वो हो जाते हैं जो मेरे

साथ वहां होंगे। और नॉर्वे में बैठू तो अमेरिका वाले याद नहीं आते। जो, जिस समय, प्रारब्धवश सामने आया, वो मेरे लिये प्रभु की मूर्ति है। वही मेरी पूजा, वही अर्चना। दूसरी क्या चीज होती है मालूम नहीं। वो जयति क्षेत्र व्यापक होगा।

आपने अरविंद का नाम लिया इसलिये कहती हूं। ढाई सौ, तीन सौ से तो ज्यादा पत्र उनके पास दुनिया भर से आवे। उनको मध्य रात्री में बैठकर श्री अरविंद लिखावे। वो प्रश्न हो सब साधना के बारे में। समाधि अवस्था में रहे बिना साधकों के प्रश्नों के उत्तर उन्हें लिखाए, लिख सकते। फिर आश्रम में रहने वाले साधक। जितनी जिसकी श्रद्धा, उत्तर उतना संबंध उससे ज्यादा दूर। ज्यादा सूक्ष्म स्तर पर उसके साथ संबंध। वहां लेन देन जो चलती है अव्यक्त जगत में, श्रद्धा और प्रेम के कारण, उसमें भी शक्ति और समय तो जाता है। तो बिचारे फिर आकर बाहर बैठकर के करते कैसे, चलाते कैसे? और पहले शरीर घिस चुके थे, इंग्लंड में क्या, बडोदा में पढाते हुए क्या, वो युगांत चलाते हुए क्या, हरिपूर जेल में क्या? ओर ये पडे थे। हां भाई, १९२५, २६ में? तो शरीर भी उतना कार्यक्षम नहीं रह गया।

रमण महर्षी चतुर व्यक्ति थे, बोलते ही नहीं थे। घंटों बैठे रहना, देखना है तो देखो, आंखों में झांकना है तो झांको। बहोत गंभीर किसीका सच्चा सवाल हो तो बोले, नहीं तो बोले भी नहीं। घंटों वे बैठे हैं, आप बैठो, जाव। चतुर आदमी।

और हमारे रामकृष्ण भोले भाले। इतना प्रेम, इतना प्रेम, उस प्रेम को शरीर अडतालिस वर्ष भी खुद बहा नहीं सका। आखिर मर्यादा आती है, अस्थि मज्जा के शरीर में इतना उत्कट प्रेम वहन होना, सहन होना, द मेटेबॉलिकल सिस्टिम इज नॉट केपेबल ऑफ। रात दिन जो भी आया उससे बोलते जांय, उससे गले मिलते जांय, बात करते जांय। कैंसर हुआ गलेका, डॉक्टर कहते हैं मत बोलो तो कहते हैं कि अंतिम क्षण तक बोलना है। करते गये, करते गये और सब लुटा दिया। बहुत भोले।

और वो हमारा रामतीर्थ उन्मत्त, राम बादशहा। राजी हैं हम उसीमें, जिसमें तेरी रजा हो। याँ यों भी वाहवा हो या वों भी वाहवा हो॥ तो अपनी उन्मत्तता में कहां शरीर का होश। तो बत्तीस साल में कूच कर दिया। तो कोई उन्मत्तता में, कोई अपने भोले पन में थक जाते।

लेकिन ये स्पंदनों का एक शास्त्र है। स्पंद शास्त्र का अभ्यास करने लायक है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन ये ग्रंथ उसके लिये अच्छा है। अभिनव गुप्त ने कितना कुछ लिखा इस विषय पर और अभी अभी हमारे परम प्रेमी, परम आस गोपिनाथ कविराजजी, इन्होंने इस विषय पर अच्छा ग्रंथ लिखा है। देख लेना ये ग्रंथ।

तो मनुष्य का जीवन जो है उसके स्पंदनों में से बोलता है। स्पंदन ही आपकी सच्ची वाणी, ये होठों की वाणी पर हम लोग बहोत कम विश्वास रखते हैं। आपके जो स्पंदन बोलते हैं, आपकी आभा

और शरीर की कांति जो बोलती है, उस पर से ही पता चलता है कि मनुष्य क्या जी रहा है। उसकी उत्तेजना, उसका विषाद, उसकी ग्लानि ये सब उसकी त्वचा तक लाते हैं। नथिंग कैन बी हिडन। जो चित्त में पलार्ध के लिये आया, वो भी त्वचा तक पहुंच जाता है। ये वो एलेक्ट्रो-मैग्नेटिक ऑपरेटस ब्रॉडकास्ट्स व्हाटिव्हर यू थिंक। नो वर्ड कैन चीट। नो ग्लान्सेस कैन डिसीव्ह। क्या करेंगे अपन, ये पारदर्शी शरीर भगवान ने ऐसा दे दिया है। कुछ छिप नहीं सकता। इसलिये हमने अभी अभी कह दिया था कि अध्यात्म प्रायव्हसी है नहीं।

खैर, इसको जो कुछ कहो, प्रवचन, निवेदन, वार्तालाप, कॉन्वर्सेशन, जो कुछ कहो अब समेट लेते हैं। अभी हमारी लछछी आयी। आसमिया भजन बोले, आ बेटे।